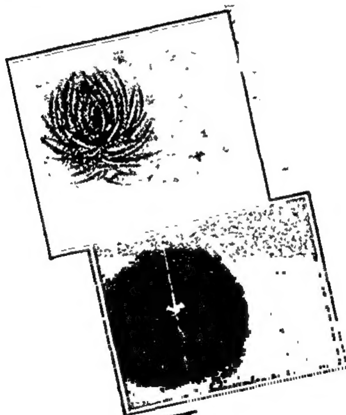


दिशा प्रकाशन
१३८/१६, त्रिनगर, दिल्ली-११० ०३५

50, गौरनगर, सागर विश्वविद्यालय, सागर—470003

कलम हुआ हाथ



बलराम

ISBN 81-85045-04-6

मूल्य : तीस रुपये
संस्करण : 1986
प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, 138/16 त्रिनगर, दिल्ली-35
आवरण : हरिप्रकाश त्यागी
मुद्रक : कमल प्रिंटर्स, 9/5866 गांधीनगर, दिल्ली-31

QALAM HUE HAATH (Short-Stories)
by Balram — Price : Rs. 30.00

मनीषराय,
संजीव, शिवमूर्ति,
राजकुमार गौतम,
मोहरसिंह यादव और
विनोद दास के लिए

आठवें दशक के आर-पार

मेरी कहानियो के सदर्भ में ग्रामीण कथाकार और ग्रामीण परिवेश की बात प्रायः उठती रही है, पर मेरे लिए गांव या शहर मे से कोई भी प्रमुख नही है। अपने को गांव या शहर के खांचे मे फिट करके हिंदुस्तान का समग्र यथार्थ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। दोनो का अन्योन्याश्रित संवध है, जिसे रचनाओ मे भी यथास्थान आना ही चाहिए। गाव का आदमी गाव मे, कस्वे मे या गाव छोडकर नगर, महानगर मे—यही मेरी कथाभूमि है यही मेरा परिवेश है। इसी परिवेश में जीते-मरते लोग, उनकी जीवन स्थितिया, उनके संघर्ष, उन पर सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक शक्तियो का दवाव, सामान्य लोगो की बात, उनकी ही भाषा मे लोक-सस्कृति के साथ सहजता व सादगी से कह देना, बिना किसी शैल्पिक चमत्कार या भाषाई छद्म के कटोरतम सच्चाइयो को लेखकीय दायित्व के साथ कलात्मक स्तर पर व्यक्त कर देना, जिंदगी को बेहतर ढग से जी सकने की आदमो की आकांक्षा और उसकी पूर्ति के लिए आसन्न सघर्ष की स्थिति और उसके स्वरूप की पहचान तथा उसी रूप मे उसकी अभिव्यक्ति आदि कुछ ऐसी वाते है, जो कहानी लिखते समय प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुझे अनुशासित करती हैं।

लिखते समय मेरी कोशिश रहती है कि हर हालत मे मेरा लेखन पीड़ित मानवता के पक्ष मे हो। मेरे पात्र जाने-पहचाने हों, प्रामाणिकता के साथ उनका परिवेश और विश्वसनीयता के साथ उनका जीवन रचना में उतरे और दूध से निकले घी की मानिंद मेरी रचना से कुछ निकले और पाठक के मस्तिष्क को सेहतमंद पोषण दे, ऐसी इच्छा रहती है।

मौजूदा व्यवस्था के प्रति तीव्र असंतोष और इसे बदलने की कोशिशों मे लगे हुए लोगो के समर्थन और साथ के कारण यदि कोई मुझे वामपंथी सिद्ध करे तो मैं एतराज नही करूंगा, लेकिन वामपंथी कहलाने के लिए किसी राजनीतिक पार्टी का कार्ड होल्डर होना मुझे कभी तक जरूरी नहीं लगा। साहित्य और साहित्यकार की अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है वह राजनीति और राजनीतिज्ञ का पिछलग्गू नही है। दोनों के काम करने के अपने-अपने तरीके हैं और उन्हें अपने-अपने तरीके से परिवर्तन का संवाहक बनने देना चाहिए।

समझ नहीं पा रहा कि क्यों कहूं अपने व्यक्तिगत संघर्ष की कथा, जबकि पूरा देश ही संघर्षरत है। जब देश ही पिट रहा है तो मेरा व्यक्तिगत संघर्ष क्या अर्थ रखता है। व्यक्तिगत संघर्ष का रोना रोने का यह वक्त नही है, यह वक्त है देश के सामाजिक संघर्ष को वाणी देने का। इसके लिए जरूरी है कि सामाजिक संघर्ष मे हम जुड़ें और उसमे अपनी हिस्सेदारी महसूस करें। व्यक्तिगत संघर्ष की ही बात करूं तो मुझे अपने जन्मकाल की स्थितियों को याद करना पड़ेगा। मुझसे पहले जन्मे मेरे कई भाई-बहन एक-एक कर मरते गये तो मुझे बचाने के लिए मा ने मुझे दो पैसे में एक कुम्हार को बेच दिया। जिंदा रहने के लिए मा द्वारा मेरा बिकना एक ऐसी घटना है, जो अब तक झकझोरती है तो मैं अपने जन्म के उसी मुकाम पर पहुंच जाता हूं और प्रायः सोचने लगता हूं —एक लेखक के रूप में स्वतंत्र जीवन या एक व्यक्ति के रूप मे बिका हुआ जीवन। मां ने किसी अंधविश्वास के तहत बेचा था और अब मेरे लेखक के सामने भी वैसा ही अंधविश्वास है कि हिंदुस्तान मे सिर्फ लेखन के बल पर जिंदा नही रहा जा सकता और हम तमाम लिखने-पढ़नेवाले लोग सुबह से शाम तक के लिए बिक जाते हैं, जैसे कि प्राचीन काल के गुलाम, लेकिन मेरी यह गुलामी क्या सिर्फ मेरी

ही गुलामी है? इस महादेश का बहुजन राजनीतिक आजादी मिलने के इतने दिनों बाद भी क्या गुलामों की तरह नहीं जी रहा है? मेरे लिए इस गुलामी से मुक्त हो लेना असंभव नहीं, पर मेरे देश के करोड़ों-करोड़ लोग जब गुलामों का-सा जीवन जी रहे हों, मात्र मेरे मुक्त हो जाने से क्या होगा? उनके साथ रहकर शायद गुलामी की स्थितियों को बेहतर ढंग से जान सकूंगा और सोच सकूंगा, सोचता रह सकूंगा कि अकेले मुक्ति संभव नहीं है और फिर कहीं भी जाऊं, करनी तो मजूरी ही है, जैसे कि तमाम सारे लोग यहां-वहां मजूरी कर रहे हैं।

उन्नीस सौ अस्सी में मेरी आठ कहानियों का छोटा-सा संग्रह आया और उसी वर्ष खत्म हो गया था। तभी मेरी अन्य कहानियों के बारे में पूछा गया था।

दूसरे वर्ष जब संग्रह का दूसरा संस्करण छपा तो मैंने तीन कहानियां और जोड़ दी, लेकिन पूछताछ फिर भी जारी रही कि और कितनी कहानियां हैं। 1983 में किताब के तीसरे संस्करण की नौबत आयी तो कुछ और कहानियां जुड़ गयी, जो 1980 तक लिखी गयी थी। इस तरह तीसरा संस्करण आठवें दशक के आर-पार मेरी कथायात्रा का पूरा लेखा-जोखा बन गया, पर कुछ कहानियां फिर भी मिल नहीं पायी थी, जो बाद में मिली, जिन्हें इस चौथे संस्करण में यथास्थान जोड़ दिया गया है। कुछेक कहानियां फिर भी नहीं हैं। कुछ प्रकाशकीय अड़चनों के चलते तीसरे संस्करण को 'मालिक के मित्र' नाम देना पड़ा था, जो अब पुनः 'कलम हुए हाथ' हो रहा है।

बी/147 बी, सादतपुर कालोनी,
पो० गोकुलपुरी, दिल्ली-110 094

क्रम

मालिक के मित्र

कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि एक दिन उत्तर भारत के मानचेस्टर कहे जाने-वाले इस महानगर के इतने बड़े अखबार का रिपोर्टर बनूंगा, वह भी चीफ-रिपोर्टर—सबसे बड़ा, विशिष्ट और अधिकार-सम्पन्न। तीस वर्ष पूरे होते न होते अखबार में मेरी तूती बोलने लगी थी, पर इस स्टोरी के बाद मेरा मोहभंग हो गया है।

पिता की इच्छा थी कि मैं डॉक्टर बनूं और चाचा का इरादा तो मुझे लंदन तक पढ़ाने का था, क्योंकि जिला स्तर की मिडिल परीक्षा में तीसरी पोजीशन प्राप्त कर मैंने अपनी प्रतिभा का परिचय दे दिया था। शायद इसीलिए उन्होंने मेरी रुचि और राय को जाने बिना हाईस्कूल में दाखिले के समय अंग्रेजी और गणित के साथ मेरे विषय—विज्ञान और जीवविज्ञान चुन दिये थे, पर बचपन से ही मेरी रुचि नाटकों में थी और मैं बनना भी नाटककार ही चाहता था। परिणाम जो होना था, वही हुआ—हाईस्कूल में सेकेंड और इंटर में थर्ड डिवीजन ही पा सका और बी० एस-सी० में सप्लीमेंट्री आयी तो पिता और चाचा के सपने बिखर गये। हुआ यह था कि कस्बे से इंटर कर जैसे ही मैंने शहर आकर डी० ए० वी० कॉलेज में दाखिला लिया, मेरा परिचय गीता से हो गया। गीता मेरी क्लासफेलो थी।

गीता का बड़ा भाई मेरे कॉलेज में अंग्रेजी का प्राध्यापक था और चाचा का मित्र। चाचा ने ही मुझे उसके घर से जोड़ दिया था।

गीता का भाई नगर के रंगमंच से जुड़ा हुआ था और देश की छोटी-बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में अक्सर उसके लेख आते रहते थे। उसके संपर्क में आकर मैं भी रंगमंच से जुड़ गया। गीता भी कभी-कभार नाटकों में रोल किया करती थी। तभी कुछ ऐसी स्थितियां पैदा हो गयीं कि मुझे गीता से शादी कर लेनी पड़ी। गीता मेरी जाति की नहीं थी, विधवा थी और एक बच्चे की मां भी।

मैं गांव का हूं और मुझे छोड़कर मेरा सारा परिवार गांव में ही रहता है। अभी भी भारत के गांव जाति-पांति की बेड़ियों में इस कदर जकड़े हुए हैं कि गैरजाति में शादी की बात वे बर्दाश्त नहीं करते। ऐसा करनेवालों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है, पर किसी भी बात की परवाह न करके मैंने एक झटके में ही वह सब कर डाला था, जिसके बारे में मेरे घरवाले सोच भी नहीं सकते, उसे स्वीकार करने का तो सवाल ही नहीं था। खैर, वह एक अलग किस्सा है, जिसका इस किस्से से कोई खास ताल्लुक नहीं है। है तो सिर्फ इतना कि इसके बाद गांव-घर से मेरा रहा-सहा सम्बन्ध पूरी तरह टूट गया। पढ़ाई के लिए घर से हर महीने मिलने वाले तीन सौ रुपये बंद हो गये और तब गीता के भाई ने मुझे पत्रकारिता से जोड़ दिया, अन्यथा पत्रकारिता को बतौर पेशा अपनाने का मेरा कोई इरादा ही नहीं था।

जिन दिनों मैंने गीता से शादी की, संयोग से उन्हीं दिनों मेरी कहानी को एक बड़ी पत्रिका की प्रतियोगिता में एक हजार रुपये का प्रथम पुरस्कार मिल गया। पुरस्कार मिलते ही शहर के अनेक लोग मुझसे मिलने के लिए लालायित हो उठे। ऐसे ही लालायित लोगों में एक थे—मिट्टू बाबू, दैनिक 'सरताज' के मालिक। उन्होंने गीता के भाई से मेरी पुरस्कृत कहानी की चर्चा की तो उसने मेरी प्रतिभा की प्रशंसा के पुल बांध दिये। वह 'सरताज' में नगर के रंगकर्म पर साप्ताहिक कॉलम लिखता था, सो मिट्टू बाबू से अक्सर उसकी मुलाकात हो जाया करती थी। मिट्टू बाबू को किसी प्रतिभाशाली युवक की तलाश थी, जो उनके अखबार को नगर के एक दूसरे

अखबार के मुकाबले अधिक कलात्मक और रुचिकर रूप दे सके, क्योंकि इस काम को अंजाम देने की गरज से रखे गये मिस्टर शंकरन अखबार छोड़कर जा चुके थे और 'सरताज' कार्यालय में मिस्टर शंकरन का स्थानापन्न कोई था नहीं।

गीता के भाई का पत्र लेकर मैं मिट्टू बाबू से मिला। मिलते ही उन्होंने कहा, 'हमें दीपावली विशेषांक के लिए दीपावली की तैयारी पर एक रिपोर्ताज दो घंटे के अंदर चाहिए।'

'मिल जायेगा।' मैंने कहा।

बाहर निकलकर चौक का एक चक्कर लगाया, कलक्टरगंज देखा और कागज-कलम लेकर टेबल पर बैठ गया और ठीक दो घंटे बाद रिपोर्ताज मिट्टू बाबू के हाथ में था। उन्होंने उसे पढ़ा और मुस्कराये। मेरी नौकरी लग गयी थी और मैंने उसी समय 'सरताज' ज्वाइन कर लिया। तीन महीने का प्रोबेशन और फिर कन्फर्मेशन। चार सौ रुपये से शुरू किया था और पालेकर अवार्ड लागू होने पर साढ़े दस सौ रुपये प्राप्त कर रहा हूं। पिछले दिनों चीफ-सिटी रिपोर्टर मिस्टर त्यागी के चले जाने से रिक्त हुए स्थान पर मुझे नियुक्त कर दिया गया है। तय है कि तनख्वाह और बढ़ जायेगी, पर इस हादसे ने मुझे क्षत-विक्षत कर दिया है।

'सरताज' ज्वाइन करने के बाद सबसे पहले मैंने शहर की श्रमिक और नागरिक समस्याओं को उठाया था। बीमार मिलों के भ्रष्ट प्रबंधकों को खींचा था और फिर नगर महापालिका के घोटालों का भंडा फोड़कर तहलका मचा दिया था। साहित्य, संस्कृति, संगीत, कला, रंगमंच, शिक्षा तथा युवा-जगत के लिए अलग-अलग दिनों में अलग-अलग स्तंभ नियमित जाने लगे थे, महिलाओं, बच्चों और बूढ़ों की दुनिया की खोज-खबर भी। इसके लिए तमाम सामग्री मैं कलाओं और विविध विषयों से संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों से सीधे-सीधे लिखवाने के अलावा अंग्रेजी की देशी-विदेशी पत्र-पत्रिकाओं से अनूदित भी करवाता था। दो साल के अंदर 'सरताज' के नगर संस्करण का प्रिंट-आर्डर बाईस से बढ़कर बयालीस हजार पहुंच गया

और प्रतिद्वंद्वी अखबार के पैर उखड़ने लगे। इसी के मुताबिक मैं 'मरताज' कार्यालय में महत्वपूर्ण होता चला गया। मैंने मिट्टू बाबू या संपादक को कभी शिकायत का मौका नहीं दिया और न ही उनसे कभी मुझे कोई खास असंतुष्टि महसूस हुई। कम्युनिस्ट संगठनों से अपनी संबद्धता के बावजूद उन्हें अखबार पर हावी नहीं होने दिया। हां, पार्टी और संबद्ध संगठनों के समाचार थोड़ी प्रमुखता जरूर पा जाते थे, लेकिन इस हादसे ने देश के अखबारों की स्वतंत्रता विषयक मेरी धारणा की चूलें हिलाकर रख दी हैं। अपने आपको पत्रकार कहते हुए शर्म महसूस हो रही है। मेरा जमीर कह रहा है कि मुझे इसी वक्त इस नौकरी से त्यागपत्र दे देना चाहिए, पर गीता, ···गीता का बच्चा···और त्यागपत्र दे देने से क्या मेरा दायित्व पूरा हो जायेगा

रिपोर्टरों और चीफ-रिपोर्टरों का नगर के प्रायः सभी बड़े अधिकारियों से परिचय होता ही है। नये-नये आये उस युवा थाना-इंचार्ज से भी मेरा परिचय हुआ। वह काफी महत्त्वाकांक्षी और उत्साही था, बहुत कुछ कर गुजरने की नीयत से भरा-पूरा। आते ही उसने नगर के असामाजिक तत्वों के खिलाफ जेहाद बोल दिया। उन्हीं में से एक था—कृष्णा नगर कालोनी के बंगला नंबर एक सौ पांच में चलने वाले अड्डे पर छापा—आठ हसीनों के साथ ग्यारह अय्याशों की गिरफ्तारी।

संपादक से बात हो चुकी थी। फोटोग्राफर साथ था। उधर फोटोग्राफर ने फोटो खींचकर फोटो विभाग को दिये और इधर मैंने सब के इंटरव्यू लेकर स्टोरी तैयार कर दी। मोनो से कंपोज होकर गैलियां प्रूफरीडर के पास जा चुकी थीं और फोरमैन पेज बनवाने की तैयारी कर रहा था कि न्यूज-एडीटर के पास मिट्टू बाबू का टेलीफोन आ गया—'फलां, फलां के विषय में इस स्टोरी में न जाने दें।' थोड़ी देर बाद संपादक का फोन आ गया—'फलां, फलां, फलां विषयक विवरण काट दें।' सुनकर मेरे अंदर कुछ खौल-सा उठा। तत्काल मैंने संपादक को फोन मिलाकर सवाल करने की कोशिश की, पर···औरतों की स्टोरीवाला हिस्सा ही छप सका।

आठ हसीनों के साथ ग्यारह अय्याश गिरफ्तार

गोंडा जिले मे एक गाव है चाँदपुर। इस गांव मे रहते हैं जनाब लियाकत अली। उनकी लड़की सफिया जैसे ही सोलह बरस की हुई, उन्होंने कानपुर निवासी वारिस अली से उसकी शादी कर दी। शादी के कुछ ही दिनों बाद पति के साथ एक युवक आया। ग्यारह बजे के करीब पति चला गया, बाहर से कुंडी लगाकर। उस रात पहली बार सफिया के साथ वह सब हुआ, जो वह चाहती नही थी और फिर प्रायः कोई न कोई आने लगा। इसके बाद कभी-कभी वारिस अली सफिया को बगलों में अन्जान लोगों के बीच भी छोड़ आता। तीन बरस के वैवाहिक जीवन मे सफिया को कभी इस बात का एहसास तक न हुआ कि वारिस अली उसका शौहर है। कई बार तो ऐसा भी हुआ कि एक ही कमरे मे कोई गैर-शख्स सफिया की देह रौंदता रहा और वारिस अली बीडी के कश लेता रहा। बाद मे तो सफिया को लगने लगा कि कोई एक शख्स उसका शौहर नहीं है, रात मे जो उसके साथ सोया, वही उसका शौहर हो गया। जिसने उसे पैसा दिया, वह उसकी हो गयी। इसी दौरान सफिया बगला न० एक सौ पाच से जुड़ गयी।

सफिया को अपनी इस जिंदगी से अब कोई खास शिकायत नही है। उसका कहना है कि जब शौहर की ही आखो का पानी मर गया तो फिर मुझे कैसी शर्म, कैसी हया! कोई अपना श्रम बेचता है, कोई अपनी बुद्धि, मेरा अपना तन बिकता है तो किसी को कोई आपत्ति क्यों है? मुझसे पहले मेरे पति ने जरीना, तैयबा और फरीदा से भी शादी की थी और वे भी इसी धंधे में लग गयी। हमे इस धंधे मे डालनेवाले कौन है? समाज के ठेकेदार या प्रशासक उन्हे गिरफ्तार क्यों नही करते? अब हम अपनी मरजी से पैसे-वालों की रातें रगीन करती हैं तो किसका क्या बिगड़ रहा है? जब तक सरकार हमे सम्मानपूर्वक जीने का सहारा नही दे देती, इस तरह से छापा मारकर हमारा अमन-चैन छीनने का उसे क्या हक है?

कानपुर मे एक मुहल्ला है नवाबगंज। जनाब नजीर हुसैन का घर यही है,

मस्जिद के पास। आठ साल पहले उन्होंने अपनी लडकी अकीला या विवाह चमनगज के मकबूल अली से कर दिया था, जिससे अकीला को दो बच्चे भी हुए—इमरान और फातिमा। अचानक पता चला कि मकबूल अली कैंसर का शिकार है। फिर क्या था, घर का पैसा पानी की तरह बहने लगा। नाते-रिश्तेदारों ने एक-एक कर कन्नी काट ली।

घर के सारे जेवर गिरवी हो गये और नन्हे-नन्हे बच्चे भूख से बिलबिलाने लगे। पंद्रह दिन पहले ही मकबूल अली का देहांत हुआ है। अकीला को उसका तीजा करना था। रुपयों की सख्त जरूरत थी और रुपये थे कि कहीं से मिलते दिखाई नहीं पड रहे थे। ऐसी हालत में सतीश नामक दलाल ने अकीला को बंगला नंबर एक सौ पांच की सरयाणी का हिस्सा बता दिया।

अकीला ने तमतमाते हुए चेहरे से मुझसे सवाल किया कि जो सरकार मेरे कैंसरग्रस्त पति का इलाज नहीं करा सकी, मेरे पति के तीजे की व्यवस्था नहीं कर सकी, नन्हे-नन्हे बच्चों को रोटी नहीं दे सकी, उसे क्या हक बनता है कि इस तरह से गिरफ्तार कर हमारे दुखी जीवन को और दुखी करे। गिरफ्तार करना ही है तो उन्हें करे, जिन्होंने हमें इन हालात तक पहुंचाया है।

परेड में एक सडक है—नयी सडक। इस सडक पर अब्दुल गफ्फार की चाय की दूकान है। उसकी दो लडकियां है—रुखसाना और शबाना। रुखसाना की शादी कई बरस पहले हो गयी थी। पिछले साल गफ्फार ने शबाना की शादी जहानाबाद के लाल मोहम्मद से कर दी। शादी के कुछ समय बाद सफिया के पति की तरह लाल मोहम्मद ने भी अपनी बीवी के शरीर की बिक्री शुरु कर दी। पहले पहल शबाना ने बिकने से इनकार कर दिया तो लाल मोहम्मद ने बेंतों से उसकी खाल उधेड़ दी और लगातार विरोध के कारण एक साल पूरा होते न होते उसे घर से निकाल दिया। पिछले दिनों लाल मोहम्मद ने एक और लडकी से शादी कर ली है। घर से निकाल दिये जाने पर शबाना कानपुर आ गयी और सतीश के चंगुल में फंस गयी। सतीश ने उसे इस धंधे तक पहुंचा दिया।

शबाना का कहना है कि अब मैं इस खूबसूरत जिस्म से अपनी-अपनी पत्नियों से असंतुष्ट अफसरों तथा बड़े-बड़े व्यापारियों की रातें रंगीन करती हूं और जो कुछ करती हूं, महज जिंदा रहने के लिए। मुझे लगता है कि अगर मैं यह धंधा छोड़ भी दूं तो अब मुझे अपनायेगा भी कौन ?

गुमटी नंबर पांच की रहने वाली है अंजू मिश्रा, हाईस्कूल पास। तीन वर्ष पूर्व उसकी शादी महाराजपुर के निवासी दुर्गाप्रसाद तिवारी से कर दी गयी थी, अठारह वर्ष की तरुणाई में। उनका दाम्पत्य जीवन एक वर्ष तक तो ठीक-ठाक चला, पर डेढ़ वर्ष बाद भी जब वह मां न बन सकी तो बांझ कहकर उसकी उपेक्षा और अवमानना शुरू हो गयी और फिर उसकी स्थिति नौकरानी भर की रह गयी। दुखी होकर अंजू मायके चली आयी और सोचती रही कि पति उसे लेने आयेगा, पर वह वहां नहीं आया। इसी बीच रेशमा नामक औरत उसे इस बंगले में खींच लायी। यहां के जीवन से अंजू खास असंतुष्ट नहीं दिखी। इसी बहाने बड़े-बड़े लोगों से जान-पहचान हो गयी है। फिर भी, अंजू को इस बात का दुख है कि पति की उपेक्षा ने उसके कदम इस कदर लड़खड़ा दिये कि अब वह अपने जीवन में सहज स्थिति की कल्पना भी नहीं कर पाती।

मेरी स्टोरी का सिर्फ इतना हिस्सा ही प्रकाशित हुआ। आगे का हिस्सा रोक दिया गया, जिसके बगैर मेरा खयाल है कि इस स्टोरी का कोई मतलब नहीं है। इस मामले में हाथ डालने के लिए एस० पी० ने थाना-इंचार्ज को झिड़कते हुए मामले को जहां का तहां दबाने का आदेश दिया था, लेकिन मामला प्रेस तक पहुंच चुका था और मैं सोच रहा था कि शहर का यह रिसता हुआ नासूर—बंगला नंबर एक सौ पांच, अब हमेशा-हमेशा के लिए साफ कर दिया जायेगा और इससे संबद्ध सभी अपराधी जेल की रोटियां तोड़ेंगे, पर ऐसा कहां हो सका, और जो कुछ हुआ, उसने मेरी आंखों में लगे प्रेस की आजादी के जाले को फाड़ दिया है और मैं साफ-साफ देख पा

रहा हूं कि हिंदुस्तान में प्रेस की आजादी वास्तव में किसकी आजादी है ? ऐसी हालत में इन लोगों के असली चेहरों को बेनकाब किया भी कैसे जा सकता है, पर आपको आगाह तो किया ही जा सकता है कि अपने घर की हिफाजत रखें और टोह लेते रहें कि बगला नंबर एक सौ पांच' जैसा कोई और बगला आपके आस-पास भी तो नही पनप रहा है।

मिट्ठू बाबू तो खैर कर्मचारियो से बहस नही करते, पर सपादक से मैंने बहस करनी चाही थी, "आपमे तो पूरा महाफोट छापने की बात हुई थी।"

'हुई थी, पर ये थोडे ही पता था कि सब अपने ही लोग निकल आयेंगे।'

'अपने लोग क्या अपराधी नही होते ?'

'होते हैं, पर मिट्ठू बाबू अखबार के मालिक हैं।'

'फिर औरतोंवाला हिस्सा भी मत छापिये।'

'यह तो छपेगा।'

'क्यो ?'

'क्योंकि मामला धमाकेदार है और आज कोई दूसरी धमाकेदार स्टोरी हमारे पास नही है।'

'लेकिन मैं इसे इस तरह से छपने नही दूगा।'

'महेश, भूल रहे हो कि तुम नौकर हो।'

'आप भूल रहे हैं कि हम पत्रकार भी हैं।'

'लेकिन मालिक नही !'

सपादक से इतनी बहस के बाद कोई गुंजाइश ही कहा थी, क्योंकि हम अखबार के मालिक नही हैं। मालिक की मर्जी के बगैर कुछ भी छाप सकते हैं भला !

दैत्याकार रोटरी मशीन पर राजधानी सस्करण छप रहा था। नगर सस्करण का स्टोनप्रूफ ओ० के० करने के बाद प्रेस से बाहर निकला तो पाया कि मैं बेचैन हूं—एक व्यक्ति के रूप मे, एक पत्रकार के रूप मे भी। लगता है,

जब तक शेष स्टोरी भी आपको बता नहीं दूंगा, मुझे चैन नहीं आयेगा। वे ग्यारह अय्याश कौन थे, वह बंगला किसका था और इस अड्डे का संचालन कौन कर रहा था, ये बातें जानने के लिए मेरा ख्याल है कि अब आप भी व्यग्र हो उठे होंगे—उन लोगों के नाम···छोड़िए, नाम-वाम में क्या रखा है और यदि मैं बता भी दूं तो आप उनका कर भी क्या लेंगे। उस तरह के लोग आपके शहर में भी कम नहीं होंगे। वे तो इस व्यवस्था के प्रतीक मात्र हैं, मसलन उनमें से छह व्यक्ति नगर के बड़े-बड़े सेठ थे, एक हाईकोर्ट का वकील, तीन डॉक्टर और एक किसी कॉलेज के छात्रसंघ का अध्यक्ष था। जिसके बंगले पर यह अड्डा चल रहा था, वह एक प्रमुख इंजीनियर है और जो इस अड्डे को चला रहा था, वह है पी० ए० सी० का रिटायर्ड कंपनी कमांडेंट, और ये सबके सब आपस में एक-दूसरे के मित्र हैं, कुछ मिट्ठू बाबू के भी, मिट्ठू बाबू—दैनिक 'सरताज' के मालिक, और मैं अपने मालिक के मित्रों के खिलाफ कर भी क्या सकता हूं ?

1980

पहली सीख

पहले ही स्वीकार कर लूं कि दैनिक 'सरताज' में मैं इसलिए नहीं जुड़ा था कि पत्रकारिता या लेखन को लेकर मेरे कोई खास सपने थे या कि मैं जन्म-जात लेखक था या कि पत्रकारिता मेरे बाप-दादों की पुश्तैनी जीविका थी।

इन बातों में से कोई भी बात ऐसी नहीं है, जिससे मैं दूर-दराज का भी अपना कोई संबंध कायम कर सकूं। सच तो यह है कि पत्रकारिता से पढ़ने-लिखने का जितना अधिक संबंध है, मेरे बाप-दादों को पढ़ने-लिखने से शायद उतनी ही चिढ़ थी, अन्यथा क्या कारण था कि उनमें से कभी किसी ने उर्दू-फारसी या अंग्रेजी तो दूर, हिंदी तक की वर्णमाला नहीं सीखी थी, पर जैसे ही अंग्रेजों ने कांग्रेस को सत्ता सौंपी, पढ़ने-लिखने की कुछ ऐसी हवा बही कि हिंदुस्तान का घर-घर शिक्षा की रोशनी से जगमगा उठा।

हवा बही थी तो फिर बहकर हमारे गांव-घर तक भी आनी ही थी और घर का सबसे बड़ा बेटा होने के कारण मुझे स्कूल जाना ही था। जाना था तो मैं स्कूल गया, कालेज भी गया और फिर कानपुर विश्व-विद्यालय से हिंदी में एम० ए० कर मां-बाप की छाती पर मूंग दलने लगा। पढ़ाई-लिखाई के दौरान जो कठिनाइयां आनी थीं, आयीं ही। एम० ए० हो जाने के बाद वे और बढ़ गयीं, क्योंकि अब मैं गांव-घर में रहकर खेती-

याडी करने लायक रह नही गया था और यदि खेती-बाडी ही करनी थी तो घरवालों का इतना रुपया-पैसा फूककर पढने की क्या जरूरत थी ? कुल मिलाकर समस्याएं बढ गयी थी—समस्याएं, जो सिर्फ मेरी नही थी। जितनी मेरी थी, उतनी ही घरवालो की भी। घर, जिसमे मा थी, भाई-बहन थे, पिता और बाबा भी।

बाबा थे कि आंखें मोचने से पहले मेरी भांवरें पड़ती देख लेना चाहते थे और पिता की रुचि मेरी शादी मे इसलिए थी कि काम करते-करते थक जाने का ताना मा से उन्हे अक्सर मिलने लगा था और खेती-बाडी में लगे छोटे भाइयों की मेरी शादी करवा देने की रुचि का अपना कारण था, उचित कारण। मेरी शादी हो जाये तो उनका नबर लगे, लेकिन मैं था कि नौकरी मे पहले छोकरी के जजाल मे बिल्कुल नही पडना चाहता था।

पहले नौकरी, फिर छोकरी और छोकरी भी कैसी, मन की, रूपवती, गुणवती और पढी-लिखी, जबकि घर के लोगों की नजर में पढी-लिखी का मतलब चिट्ठी-पत्री लिख लेने भर तक सीमित था। मामा ने ऐसी एक लडकी देखकर उनमे मेरी शादी की बात तय भी कर रखी थी, लेकिन मैं एम० ए० से कम पढी-लिखी लड़की के साथ शादी करने के सबंध मे कोई बात सुनना भी पसद नही करता था। तभी मा को अचानक न जाने कैसे टिटनेस हुई और वे गुजर गयी और घर चलाने के लिए किसी लडकी का बहू बनकर घर-परिवार मे आना जरूरी हो गया। तब बिना किसी चीं-चपड़ के मामा की देखी हुई लड़की के साथ मेरी भावरें पड गयी। एक सपने का तो इस तरह अंत हुआ और फिर हुआ दूसरे सपने का जन्म।

दूसरा सपना था, अच्छी-सी नौकरी। कई जगह अर्जियां भेजी, जवाब सिर्फ 'सरताज' से आया। लिखित जाच हुई और फिर साक्षात्कार। मैं चुन लिया गया—प्रशिक्षणार्थी पत्रकार।

चयन के बाद मैंने पहली तारीख से दैनिक 'सरताज' ज्वाइन कर लिया और मेरा प्रशिक्षण शुरू हो गया। प्रधान सपादक ने मुझे अपने केबिन मे बुलाया और बताया कि डाक एडीशन के साथ मुझे सप्ताह मे दो फिल्मो की समीक्षा भी लिखनी है। दो फिल्मों के पास देते हुए उन्होने कहा कि परसों सुबह तक इनकी समीक्षा मिल जानी चाहिए।

यह काम पाकर मैं काफी खुश हुआ। घटिया और स्तरहीन फिल्मों की खाट खड़ी करके रख दूंगा, मैंने तय किया था। 'सग्नाज' चूंकि प्रदेश का सर्वाधिक बिक्रीवाला अखबार है, इसलिए जनता पर मेरे लिखे हुए का असर पड़ेगा, सोचकर मैंने बड़े उत्साह से दोनों फिल्में देखीं और समीक्षाएं लिख डालीं।

दैनिक समाचार-पत्र के लिहाज से मैंने बोधगम्य भाषा में अपनी दो टूक राय जाहिर कर दी थी। मुझे उम्मीद थी कि समीक्षाएं संपादकजी को पसंद आयेंगी। अखबार में अब तक छपती रही घिसी-पिटी समीक्षाओं की तुलना में मेरी समीक्षाएं प्रधान संपादक को भी पसंद आनी चाहिए, मैंने सोचा और संपादकजी की बजाय सीधे प्रधान संपादक को दिखाने के इरादे से समीक्षाएं लेकर उनकी केबिन में घुस गया, लेकिन वे एक हफ्ते के लिए बाहर चले गये थे। मन मारकर समीक्षाएं संपादकजी की मेज पर रखकर उनके सामने खड़ा हो गया। मेरी लिखी समीक्षाएं पढ़कर वह आगबबूला हो उठे और समीक्षाएं मेरे मुंह पर दे मारीं। मेरी समझ में नहीं आया कि इन समीक्षाओं में आखिर ऐसा क्या है कि संपादकजी इस कदर भड़क उठे।

किसी पिटे हुए मोहरे की तरह मैं वहां कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा तो उन्हें लगा कि शायद मेरे जैसे एकदम नये आदमी के साथ उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। उन्होंने मुझे बैठने का संकेत किया और समझाते हुए बोले, 'तुम्हारी राय अपनी जगह सही हो सकती है, पर ये टाकीजें भवानी साहब की हैं और वे हमें हर महीने अपने किसी-न-किसी प्रतिष्ठान का विज्ञापन देते हैं। तुम्हारी समीक्षा छपते ही उनके विज्ञापन बंद हो सकते हैं और इसी तरह से अगर हम पचास लोगों को नाराज करके बैठ गये तो हमारा अखबार बंद हो जायेगा और अखबार बंद हो गया तो समझो हमारी नौकरी खत्म। इसलिए अखबार में कभी भी ऐसा कुछ मत लिखो, जिसमें विज्ञापनदाता नाराज हों। जाओ और इन समीक्षाओं को दुबारा लिखकर मुझे दिखाओ।'

पत्रकारिता की इस पहली सीख ने मुझे ऐसी जमीन पर पटक दिया, जहां मेरे हाथ-पांव लुंज-पुंज हो गये।

अगले दिन समीक्षाओं का पुनर्लेखन किया और मध्यमार्ग का अनुसरण

कर फिल्मों की थोडी तारीफ की, थोडी-सी धुनाई, लेकिन वे समीक्षाएं भी संपादकजी को पसंद नही आयी। तीसरी बार फिर लिखने का आदेश देते हुए वे बोले, 'आपकी लिखी समीक्षाओं से न तो यह पता लगता है कि फिल्में अच्छी हैं और न ही यह कि फिल्में खराब हैं। इतने बडे अखबार में लिखते हुए आपको इसकी गरिमा का खयाल तो रखना ही चाहिए।'

तीसरी बार लिखकर मैंने समीक्षाए फिर संपादकजी के सामने परोस दी। ताज्जुब है कि फिल्मों की सतही तारीफ संपादकजी को पसंद आयी और दोनो समीक्षाएं तत्काल मोनो विभाग को भेज दी गयी। पचिंग और काम्पिंग के बाद चार बजे तक गैलिया मेरे सामने थी। हीरो-हीरोइन के उत्तेजक चित्र भी आ गये।

आठ बजे मैंने चौथे पेज का स्टोनप्रूफ देखा, उसमें अपनी करतूत देखी और उसके नीचे छपा अपना नाम देखा तो एकबारगी मन किया कि वहां से भाग जाऊं, पर तुरंत ही सवाल उठ खडा हुआ कि यहा से भागकर जाऊंगा तो दूसरी नौकरी कहा धरी है? तय है कि मैं नहीं भाग सका, मैं नही भाग सकता।

अब दैनिक 'सरताज' मे मेरे नाम से जो भी छपता है, वह, वह नही होता, जो मैं लिखना चाहता हूं, वह वह होता है, जो सपादकजी चाहते है और संपादकजी क्या चाहते है, उन्होंने पहले ही दिन बता दिया था।

1980

कामरेड का सपना

कामरेड कल्ला को शायद अपनी नियति का पूर्वाभास था, तभी तो उन्होंने अपनी डायरी में लिख दिया था—जिस तरह की स्थितियां बनती जा रही हैं, उनमे अब शायद मैं मार दिया जाऊं, पर मेरा विश्वास है कि इस तरह की मौतें बेकार नही जाती। मेरी मौत भी बेकार नही जायेगी। उससे क्षेत्र के भूमिहीन मजदूरों और गरीबों के कलेजों मे चुभन होगी, वे आपस मे संगठित होंगे और जब मेरी चिता जलेगी तो न सिर्फ हजारों पार्टी कार्यकर्ता, बल्कि तमाम और लोग भी आयेंगे। मेरी चिता की आग सुदरी घाट पर ही ठंडी नहीं हो जायेगी, वह धीरे-धीरे फैलेगी और फिर वह दिन भी आयेगा, जब सड़े हुए लोकतंत्र के ये सारे ढोंग खत्म होंगे और एक नयी व्यवस्था में हमारा सपना साकार होगा।

और सचमुच, पोस्टमार्टम के बाद जब सुदरी घाट पर कामरेड की लाश जलायी गयी तो लगभग पाच हजार पार्टी कार्यकर्ता, भूमिहीन मजदूर और गरीब-हरिजन उपस्थित थे। फसाद की आशंका से जिला प्रशासन को शव के साथ दो लारी पी० ए० सी० लगानी पड़ी थी।

लल्लई पंडित और मरजू ठाकुर ने कामरेड की हत्या के बाद थानेदार को पाच हजार रुपये की थैली पहुचा दी तो दिन दहाड़े घर मे घुसकर हत्या

का यह मामला सरजू ठाकुर के घर डकैतों के धावे में हुई मुठभेड़ का मामला बन गया। ललई पंडित और सरजू ठाकुर ने पुलिस की मदद से हरिजनों को इतना आतंकित कर दिया था कि गांव में कोई भी ऐसा नहीं बचा, जो सही बात कह सकता। डकैती के आरोप में तेरह पार्टी कार्य-कर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया, जबकि ललई पंडित और सरजू ठाकुर का एक भी आदमी गिरफ्तार नहीं हुआ। कामरेड की हत्या के मामले में जिनकी नामजद रिपोर्ट की गयी थी, गांव में होते हुए भी पकड़े नहीं गये। गांव के सभी लोगों को सांप सूंघ गया। पार्टी ने थानेदार के खिलाफ जुलूस और प्रदर्शन का आयोजन किया तो गांव का एक भी आदमी उसमें शामिल होने के लिए तैयार न हुआ। ललई पंडित और सरजू ठाकुर के आतंक से सबकी रूह कांप रही थी।

उस गांव में छह दिन गुजारकर हम शहर के लिए वापस लौट रहे थे, तभी कस्बे में धरमू चाचा से मुलाकात हुई तो वे बोले, 'कामरेड कल्ला की मौत से क्षेत्र के सवर्ण-भूस्वामी तो खुश हैं, पर खेतिहर मजदूरों और हरिजनों में बला का गुस्सा है। कामरेड कल्ला जनता के चहेते आदमी थे, पार्टी चाहती तो उस दिन कुछ भी हो सकता था, किंतु····' कहते-कहते धरमू चाचा रुक गये और रांपी से चमड़ा छीलने लगे। हमने उन्हें फिर उकेरा, 'चाचा, जब आप लोग पांच हजार थे तो फिर दो-चार सवर्णों की हत्या या उनकी एकाध बस्ती फूंककर कामरेड कल्ला की मौत का बदला क्यों नहीं चुका लिया?'

'पार्टी के आदेश के बगैर हम कुछ नहीं कर सकते। और फिर सरकारी अमला भी सवर्ण भूस्वामियों का ही पक्ष लेता है। ऐसी हालत में बदले की बात सोचना अपने हाथ आग में डालने जैसा होगा। अभी तो हम संगठित हो रहे हैं। एक बार सही चेतना से लैस होकर सब संगठित हो गये तो फिर लड़ाई जीतने में वक्त नहीं लगेगा।'

कस्बे में सड़क पर चमड़ा छीलते धरमू चाचा जैसे मोची से यह सब सुनकर विश्वास नहीं हुआ कि नगरों और महानगरों के कॉफी-हाउसों में--

गूंजनेवाली ये बातें अब यहां तक भी पहुंच गयी हैं, पर यह सच था, इसका एहसास हमें वहां बार-बार हुआ। यह सब देखकर पहली बार लगा कि देश के खेतिहर मजदूर और हरिजनों के सीने में दहकता हुआ असंतोष का ज्वालामुखी किसी विस्फोटक क्षण का इंतजार कर रहा है।

यह सब अपनी आंखों से देखने का अवसर नहीं मिलता, अगर वह क्रांतिकारी साथी अचानक मेरे दफ्तर आकर इस अभियान की सूचना न दे गया होता और फिर हमने कामरेड के नाम पार्टी सेक्रेटरी में पत्र लेकर उस गांव जाने का कार्यक्रम न बना लिया होता।

हम चौराहे पर आ गये थे, हम यानी हम दोनों, मैं और मेरा वह क्रांतिकारी साथी। गांव जाना था, साथी के मामा के गांव। उस गांव की बगल में ही वह गांव था। तैयार होकर हम दोनों चौराहे पर आये तो धूप काफी तेज थी और पकी दोपहरी का सूरज ठीक हमारी खोपड़ियों पर चमक रहा था। चौराहे पर खड़े हम दोनों काफी देर तक मिनी बस का इंतजार करते रहे। कानपुर से मामा के गांव के करीबी कस्बे तक मिनी बस जाती है, मामा ने बताया था। दसियों बरस बाद साथी मामा के गांव जा रहा था और मेरा तो खैर यह पहला ही मौका था। कुछ और लोग भी हमारी तरह बस का इंतजार कर रहे थे, पकी दोपहरी के सूरज की तेज धूप में अपनी-अपनी खोपड़िया सेंकते हुए।

काफी देर तक तो हम लोग उस धूप में सहलते रहे और फिर जब सिर चिकटने-से लगे तो पास की कैन्टीन में चले गये। कैन्टीन क्या थी, कैन्टीन का नाम था। कुल जमा एक बेंच थी, वह भी टूटी हुई; और थी एक भट्ठी, केतली, कुछ कप-प्लेट और अल्युमिनियम के चम्मच। एक बाल्टी और उसके पानी पर तैरती हुई धूल की पर्तें। दूकानदार शायद बैरे का काम खुद ही करता था, क्योंकि वहां कोई और लड़का नहीं था। दूकानदार ने चाय के लिए पूछा, हमने इनकार से सिर हिला दिया तो वह हमें अजीब नजरों से घूरने लगा। हमने नजरों के भाव पहचाने और चुपके से खिसक लिये।

फिर वही खुला आकाश, आकाश में जलता हुआ सूरज और तपती हुई जमीन हमारे सामने थी।

सिटी बस जा चुकी थी। अगली चार-पांच बजे जानी थी। एक लड़के ने बताया तो हमने एक टेम्पो को धर दबोचा। डेढ़ गुने पैसे पड़े, फिर भी इत्मीनान से बैठने भर को भी जगह नसीब नहीं हुई। आठ-नौ लोगों की जगह पंद्रह आदमी ठुसे हुए थे।

कोई एक घंटे बाद शहर की ऊंची-ऊंची इमारतों, छोटी-छोटी फैक्ट-रियों और झुग्गियों-झोपड़ियों को पीछे छोड़ती टेम्पो ने हमें गवई माहौल में पहुंचा दिया। दूर, बहुत दूर तक दिखती ऊबड़-खाबड़ जमीन, सड़क के किनारे-किनारे दोनों ओर खड़े पेड़ और दूर-दूर तक चरते हुए जानवर। गर्मी के उन मौसम में भी सड़क के आस-पास अच्छी-खासी हरियाली दिख रही थी। डामर की सहलती सड़क को चीरती टेम्पो काफी रेस में थी, कहीं ठंडी और कहीं गर्म हवाएं जिस्म से टकरा रही थीं।

तबीयत से हिचकोले लेती हुई टेम्पो कस्बे में रुकी। तब तक आकाश में हल्की-हल्की बदली छा गयी थी और वातावरण को खुशनुमा कर गये थे ठंडी बयार के झोंके। बयार के कुछ झोंकों और आकाश की बदली में मन को इत्मीनान हो, इसके पहले ही हौले-हौले खुलते जाते आकाश और नज-दीक आती धूप ने हमें यथार्थ पर ला पटका और हम टेम्पो से उतरकर जमीन पर आ गये।

मेरा गला सूखने लगा तो मैंने पानी तलाशा। सामने एक हैंडपंप है, साथी ने इशारा किया तो मैंने देखा—पंप के आस-पास की जमीन सूखी थी। पंप शायद बिगड़ा है, मैंने अनुमान लगाया। साथी ने जाकर देखा तो पंप बिगड़ा ही था। उसने बताया तो मारे प्यास के मेरे प्राण हलक को आ गये।

गली में आगे बढ़े तो एक कुआं दिखा—पक्का-सीमेंटेड, चार खंभों और गरारियोंवाला। दो बच्चे पानी भर रहे थे और एक अधेड़ स्नान कर घर जाने को तैयार खड़ा था। जाने की उसकी मुद्रा देख मैं लपका तो वह ठिठककर रुक गया। शायद हमारी पोशाक ने या फिर प्यासी मुद्रा ने उस पर प्रभाव डाला था। चुल्लू बनाकर मैंने इशारा किया तो वह सकुचाया। मैंने दोबारा कहा तो अल्मुनियम की अपनी लुटिया भरकर उसने मेरी ओर बढ़ा दी और बोला, 'हम चमार हन बाबूजी !'

उसकी बात सुनकर भी मैंने लुटिया ली और हाथ का बेग कुए की जगत पर पटककर बिना कुछ कहे पानी पर पिल पड़ा। पूरे दो लोटे पानी अपनी टकी मे भर लिया तो कुछ इत्मीनान आया। इसके बाद मैंने उसे गौर से देखा—बढ़ी हुई खिचड़ी दाढ़ी, सिर पर छोटे-छोटे बाल, काला-कलूटा शरीर और उस पर बेतहाशा उगे बाल। कोटरों मे धंसी आंखें, चिपके हुए गाल और पैरो मे बिवाइयां। मैंने उससे कहा, 'कुछ भी सही, आदमी तो हो और फिर पानी पीने मे क्या चमार, क्या ठाकुर।' मेरी बात सुनकर वह बोला, 'हिया तो बाबूजी, अगर हम धोखेह से कउनेव बराम्हन-ठाकुर का पानी पिया देन तौ मारि डारे जान।' कहते हुए उसने एक लोटा पानी साथी की तरफ भी बढ़ा दिया, पर उसे शायद प्यास नही लगी थी। उसने इनकार मे सिर हिला दिया तो फिर हम आगे बढ़ गये। थोड़ी देर पहले आकाश पर छतरी की मानिंद छा गये बादल फटने लगे और चिलचिलाती धूप फिर हमारे सिर तपाने लगी।

कच्चे-पक्के घरो के दरवाजो पर दरख्तों के नीचे बंधे हुए बैल, गायें, भैंसें, बछड़े और बकरियां। चबूतरो पर छप्परो के नीचे ठड़ाते हुए लोग, कुए पर पानी भरती औरतें और लड़कियां। धूप मे खेलते हुए नंग-धड़ंग बच्चे, गांव का बटहा और बटहे की धूल मे अपने बेलबाटम घसीटते हुए हम मामा के घर की चौखट पर पहुंच गये थे।

मामी ने दरवाजा खोलकर हमें कमरे मे बिठाया तो धूप और उमस मे जलने लग गये हमारे जिस्मो को पंखे की याद आयी। छत पर दृष्टि टिकी, पर सीलिंग फैन नही था। अगल-बगल कोई टेबल फैन भी नही दिखा और तब हमने देखा कि कमरे मे तो अभी वायरिंग भी नहीं हुई है, हालांकि दरवाजे पर बिजली का खंभा बाकायदा गड़ गया है। हमारी तकलीफ समझकर मामी अंदर गयी और खजूर का पखा ले आयी और फिर उन्होंने शरबत पिलाकर तर कर दिया।

स्टोव जलाकर फटाफट पराठे सेक दिये तो हमने अपने पेट मजबूत किये और चारपाई पर लंबे हो गये।

काफी देर आराम कर चुके और सूरज का गोला जब पेड़ो के पीछे छिपता नजर आया तो हम हरिजन टोले की तरफ निकल गये।

रात अब हमारे साथ हो गयी थी और अंधेरा इतना कि करीब के आदमी को ही पहचाना जा सके। दायी तरफ ढलान थी और उसके नीचे तालाब, जिनका पानी अंधेरे के बावजूद नजर आ रहा था। बायी तरफ ऊंची दीवारों के कच्चे घर थे और उनके सामने बड़ा-सा चबूतरा। चबूतरे के मध्य में शिवलिंग और उसकी बगल मे नादिया। शिवलिंग पर दियाली जल रही थी, मद्धिम-मद्धिम। उसकी लौ कांप रही थी। बाकी सब तरफ अंधेरा था, अंधेरा ही अंधेरा।

हम दूसरी तरफ आये और पैर लटकाकर चबूतरे पर बैठ गये। बटहे में दूर से आती हुई आकृतियां उभरी और शनै-शनै हमारे करीब आ गयी तो फिर अचानक मेरे होंठ हरकत कर गये।

'सुनिए···'

'·······'

'ए भाइ···'

'ऍंऽऽ···' कहते हुए उनमे से एक मुड़ा और फिर दूसरा भी। एक के हाथ में फावड़ा था, दूसरे के पाथा। वे हमारे पास खिसक आये और तब हम असमंजस में पड़ गये कि बात कहा से शुरू करें। साथी भी चुप था। उसके होंठ भी शायद सिल गये थे। पहल मुझे ही करनी पड़ी।

'हम लोग शहर से आये है।'

'तो···?'

'आप लोगों से बाते करना चाहते हैं।'

'तो फिरि करो।'

'आप अपनी कुछ समस्याएं हमें बताएं'

'जानिकय का करिहव ?'

'लिखेंगे।'

'ओंदे का होइ ?'

'उन्हें हल किया जायेगा।'

'जेखा बाबव, यहय समसाएं हल करैं केरि बात करत हय। अमेले-

री, ईडियो-वीडियो सब याक-दुई वार आय कय दुवारा कबहू शकल लग खावन तब आवत नाइ हैं।'

'हम लोग सरकारी आदमी नहीं हैं।'

'सरकारी नाइ है ?' उसमे से एक ने आश्चर्य मे कहा और तब दूसरा बोला।

'तौ फिरि तुम्हरे लिखे-पढे ते का होइ ?'

कहकर उसने अपने साथी को धकियाया और फावडे को कधे पर रख-कर चल दिया। निकर और बनियान भर पहने थे वे। पैरो मे चप्पलें नही थी।

एक शायद खेतो से लौट रहा था और दूसरा बायें कधे पर पाचा धरे खलिहान से।

उनके तेवरो से लगा कि बात बिगड रही है। तभी तीसरा व्यक्ति हमसे आ टकराया और फिर बातो का सिरा हमारे हाथ मे आ गया। तब वे दोनो भी रुककर हमारे साथ हो गये और कुछ बातें हो गयी।

'इस गाव मे किस-किस बिरादरी के लोग रहते है ?'

'बराम्हन, छत्तिरी, अहीर, पासी, कोरी, चमार, धानुक, सबय बिरा-दरी के लोग तब है।'

'और तुम लोग ?'

'हम लोग पासी हन।'

'बराम्हन-क्षत्तिरी ज्यादा हैं कि चमार-धानुक ?'

मेरे इस सवाल पर वे थोडी देर तक तो सोचते रहे और फिर एक ने जवाब दिया।

'पासी-चमार।'

'बराम्हन-छत्तिरी तुम्हय सबका परेशान तब नाइ करत हैं ?'

'खूब करत हैं साहेब। जान खाये रहत हैं। हमार सबके आधे घर-दुआर उनके हिन गिरवी हैं।'

'काहे ?'

'कबहू गाहे-बगाहे सौ-दुई सौ रुपया लइ लीन तब उइ सुरसा के मू की तरा बाढत है, अऊर फिर सब कुछ गिरवी होई जात हय।'

'तुम लोग लिखि काहे चाहत हव?'

'लिखि कइसे न देब साहेब, लाठी बेरि ताकत नइ कुछु करदा लेति हव। पर अउर खेतों में लिखन, तब बर्तन-भाड़े बिके। वइ कहत हैं, तब करनद का परत हव।'

'कइसे करन का परत हव, सब जने निस्चिन्त उनते ज्यादा हव. तब-हूँ मारेन ते डेरात हव। इको सब अइने थोड़ो खतम होई। एहिके खातिर खून बहावै का परी, खून।'

बाद में आये तीसरे व्यक्ति ने पहली बार हमारी बातों में हस्तक्षेप किया। वह काफी उत्तेजित हो उठा था। कुछ देर बाद वह फिर बोला।

'सब जने निस्चिन्त एक होइ जाय, अउर याक दिन हल्ला बोलि देय। दुइ-चारि का मारब, अउर दुइ-चारि मरि जाय। तबहिन कुछु होइ। रूवावन-ध्वावन तें कुछु होन वालो नांइ हव।'

वह रौ में बह गया। उसके भीतर की आग अचानक बाहर आ गयी थी। अपनी बात कहकर वह खामोश हो गया, जैसे कोई ज्वालामुखी धधक-कर एकदम से ठंडा पड़ गया हो और फिर हम अपनी-अपनी राह निकल गये।

साथी के मामा के गाव में एक रात और एक दिन गुजारकर हमने उनसे विदा ली और बगल के गाव पहुच गये, जहां का हमारा कार्यक्रम था। कामरेड रघुनंदन को पार्टी सेक्रेटरी का पत्र दिया तो सारी कार्रवाई देखने की छूट हमें मिल गयी। नियत समय पर कामरेड रघुनंदन हमें लेकर वहा पहुच गये।

बैठक गुप्त ही थी। धानुक, पासी, कोरी, चमार और कुछ अहीर मिलाकर कुल सत्ताईस लोग थे। कामरेड कल्ला की बखरी में आयोजित हुई थी यह बैठक। लालटेन की लाल रोशनी में पहली बार हमने कामरेड कल्ला को देखा—सामान्य कद-काठी, भरा हुआ शरीर और सिर पर खिचड़ी बाल। छोटी मूछे और शेर की तरह तीखी नजर। शरीर पर बनि-याइन और धोती। अंदर से किवाड़ बंद कर लिये गये। प्रस्ताव-पत्र साथर

पहले से ही तैयार कर लिया गया था, जिसे कामरेड रघुनन्दन ने पढ़ा :

'लड़ाई सवर्णों और हरिजनों की नही है। लड़ाई अमीरो और गरीबो की है। कामरेड बसत को ही ले लीजिए—तिवारी है, एम० ए० है, इनका भाई मनोहर बी० ए० है। बरसो से दौड लगा रहे है, पर इन्हे न नौकरी मिलती है, न रोजगार, क्योंकि ये गरीब हैं। इनके सबध अमीरो से नही है। ये रिश्वत भी नही दे सकते, नहीं तो नौकरी और रोजगार मिलते कितनी देर लगती है। मजबूर होकर दोनो भाई यहा गाव मे अपनी दो बीघे खेती मे घास खोद रहे हैं। पद्रह-सोलह साल तक जिन हाथो ने कलम थामी, आज फावड़ा, पाचा और हल थाम रहे है।

अब यह अधेर नही तो और क्या है कि रामलाल समेत अठारह भूमिहीन लोगों को इमरजेंसी मे तीन-तीन बीघे के पटटे मिले। लड़-झगड़कर किसी तरह पार्टी ने बड़ी मुश्किल से कुछ लोगो को कब्जे दिलाये। रामलाल बेचारा ज्यादा गरीब है तो उसके पट्टे के उत्तरी सिरे की आधा बीघा जमीन पर आज भी ललई पडित का कब्जा है और दक्षिणी सिरे की आधा बीघा जमीन सरजू ठाकुर दाबे है। यह ज़ोर-ज़बरदस्ती कब तक सहेंगे हम ?

इस ज़ोर-ज़बरदस्ती का प्रतिकार करने के लिए पार्टी के फैसले के मुताबिक ललई पडित और सरजू ठाकुर द्वारा दबा ली गयी रामलाल की जमीन पर खड़ी अरहर की फसल हम लोग काटकर रामलाल के घर पहुचा देंगे। देखते है कि ललई पडित और सरजू ठाकुर क्या करते है ? हसिया और गडासा लेकर आप लोग कल सुबह तैयार रहें। कामरेड घन्ना के नेतृत्व मे बाहर से अस्सी कामरेडो का एक दस्ता सुबह आयेगा।'

प्रस्ताव-पत्र पढ़कर कामरेड रघुनदन बैठ गये। कुछ लोगो ने कुछ सवाल उठाये, जिनका जवाब कामरेड कल्ला ने दिया और फिर उन्होंने गुहार लगायी, 'अरे ओ चंद्रावती, जरा बीडी-माचिस तब दइ जा।'

'अबहिन लायी बप्पा !'

कहकर थोड़ी देर बाद चद्रावती बीडी-माचिस दे गयी। सब ने बीड़ी सुलगायी और फिर बैठक समाप्त हो गयी। हम लोग कामरेड रघुनंदन के घर चले आये।

लगभग ग्यारह बज चुके थे। चौपाल में टंगी लालटेन की मद्धिम रोशनी चौतरफ फैल रही थी। भोजन करने के बाद खुले आकाश तले सोये तो भला लगा। दिनभर की चला-फिरी ने बुरी तरह से थका डाला था, सो जल्दी ही पलकों की राह नींद उतर आयी और हम सो गये।

सुबह उठकर दिसा-मैदान को गये और लौटे तो मन प्रसन्न था। ठंडी-ठंडी पछुआ बयार हमें सहला रही थी।

एक चबूतरे पर चार-पांच लोग अट-शट बक रहे थे और फिर उन्होंने एक को मारना शुरू कर दिया। डंडों से जमकर धुर दिया तो वह घुस-मुड़ियाकर वहीं वहीं में ढेर हो गया। मुंह में खून की धार बह चली। और जब काफी लोग इकट्ठे हो गये तो मारनेवाले चुपके से सरक गये।

कामरेड रघुनंदन दांत पीसकर रह गये। उन्होंने बताया कि गांव में ऐसी घटनाएं अब आम हो गयी हैं। लोग इतने आजाद हो गये हैं कि जब जो मन में आता है, कर गुजरते हैं। किसी को कोई डर ही नहीं रह गया है। जिसे मारा गया, दुनगू चमार है। पीटनेवाले ब्राह्मण और ठाकुर थे।

दुनगू ने पहले कभी ललई पंडित से रुपये उधार लिये थे। जितने लिये थे, उसके दुगुने वह दे चुका है, पर ब्याज-दर-ब्याज वह रकम चौगुनी हो गयी है, जिसे देने से दुनगू ने इनकार कर दिया और ज्यादा सताने पर थाने में रिपोर्ट लिखाने की धमकी दे दी। ललई पंडित को कुछ और नहीं सूझा तो दुनगू की हड्डी-पसली तुड़वा दी और कहलवा दिया कि यदि पंद्रह दिन में एक-एक पैसा न चुका दिया तो जान से मार दिया जायेगा। कुछ न हो सके तो वह अपनी जमीन सरजू ठाकुर के पास गिरवी रख दे और रुपये लेकर उनका कर्जा अदा कर दे।

पूरी तहसील के सवर्ण भूस्वामियों की आंख की किरकिरी बन चुके हैं कामरेड कल्ला, जिन्हें ये लोग किसी भी कीमत पर खत्म कर देना चाहते हैं। कामरेड कल्ला का परिवार यहां के जमींदार पंडित देवीलाल का बंधुआ मजदूर था। दसेक साल पहले कामरेड धन्ना के संपर्क में आकर कल्ला बंधुआ मजदूरी की बेड़ियां तोड़कर कामरेड हो गये थे। इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० करने के बाद कामरेड धन्ना आई० ए० एस० की परीक्षा में नहीं बैठे और न ही किसी सरकारी नौकरी में गये। वापस अपने

गाव लौट आये थे और तहसील भर के गावो मे कामरेड कल्ला जैसे सैकड़ो लोग खडे कर दिये। कामरेड कल्ला की देखा-देखी तमाम बधुआ मजदूरो ने अपनी बेडिया तोडनी शुरू कर दी। कामरेड धन्ना और कामरेड कल्ला की आवाज पर हजारो भूमिहीन मजदूर इमरजेंसी मे मिले पट्टो पर कब्जे के लिए पार्टी के झडे तले तहसील पर कई बार प्रदर्शन कर चुके है।

कामरेड धन्ना तो खैर पोस्टग्रेजुएट है, किंतु पांचवी पास कामरेड कल्ला देखते-देखते हरिजन नेता के रूप मे उभर आये, इमरजेंसी मे जिन भूमिहीनो को जमीन के पट्टे मिले थे, उनका कब्जा दिलाने मे कामरेड कल्ला ने खून-पसीना एक कर दिया और येन-केन-प्रकारेण अनेक लोगो को कब्जा दिलवाने मे सफलता भी प्राप्त की।

बीसियों झडे फहराने लगे थे कामरेड कल्ला के दरवाजे पर। हसियो और गडासो से लैस होकर जमा हो गये थे सौ से ज्यादा लोग।

भूमिहीन मजदूर! जिंदाबाद! जिंदाबाद!!

शोषण का, उत्पीडन का! नाश हो! नाश हो!!

अपना हिस्सा! ले के रहेंगे! ले के रहेंगे!!

इनकलाब! जिंदाबाद! जिंदाबाद!!

जोरदार नारे लगाते हुए चल पडे थे लोग, कामरेड कल्ला और कामरेड धन्ना की सयुक्त कमान मे। ढाई बीघे अरहर काटकर रामलाल के घर पहुचा दी गयी। किसी ब्राह्मण-ठाकुर की हिम्मत नही हुई कि कुछ बोलता। ललई पंडित और सरजू ठाकुर दात पीसकर रह गये, 'हमारे सामने ही चमट्टो ने हमारे खेत काट लिये।'

दोपहर के बाद दूसरे गावो के लोग अपने-अपने गाव चले गये और उस गाव के लोग अपने-अपने घर। इस बीच ललई पंडित और सरजू ठाकुर ने पूरी योजना तैयार कर ली। कामरेड कल्ला के घर रह गये थे सिर्फ कामरेड धन्ना। दोनो लोग खाना खाकर उठे ही थे कि आठ-दस लठैतो ने उन्हे घेर लिया और शुरू कर दी लाठियो की बौछार। वार पर वार झेलते रहे कामरेड कल्ला और कामरेड धन्ना। उनकी लाठिया टूट गयी और फिर

वे गिर गये। गिर गये तो फिर गिर ही गये। घायलावस्था में उन्हें जिले के बड़े अस्पताल ले जाया गया, जहां कामरेड कल्ला ने दम तोड़ दिया।

धरमू चाचा के पीछे हलवाई के तखत पर बैठे हम बस का इंतजार कर रहे थे, तभी लाल झंडोंवाला एक छोटा-सा जुलूस नेहरू पार्क की तरफ से आता हुआ दिखाई पड़ा।

'कामरेड कल्ला के हत्यारों को अभी पकड़ा क्यों नहीं गया, इस बात को लेकर पार्टी द्वारा आज थाने पर प्रदर्शन का आयोजन है, वही जुलूस आ रहा है।' कहते हुए धरमू चाचा अपना सामान समेटने लगे और टूटी हुई कठसिया में भरकर पीछेवाले हलवाई की दूकान में रख आये। जैसे ही जुलूस सामने आया, धरमू चाचा के साथ तीन-चार और मोची जुलूस में शामिल हो गये। गांव में व्याप्त उनके आतंक के बावजूद हमने देखा—कल तक जो काम कामरेड कल्ला संभाले हुए थे, आज कामरेड रघुनंदन ने संभाल लिया है। रघुनंदन के अलावा गांव के आठ-दस और लोग जुलूस में शामिल थे। तभी हमारी नजर जुलूस में सबसे आगे झंडा लिये चल रही युवती पर ठहर गयी। वह युवती कोई और नहीं, कामरेड कल्ला की बेटी चन्द्रावती थी, पिता की हत्या की मातमी मुद्रा से पूर्णतः मुक्त, किसी लड़ाकू सैनिक-सी तनी हुई।

1979

पालनहारे

हेमू से थोड़ा आगे वे तीनों लड़के सगरा तक पहुंचे थे, सगरा ताल, कहा जाता है कि बहुत पुराना है, दानवीर राजा मोरध्वज के जमाने का। तब बहुत गहरा था, इतना कि हाथी डूब जाये। एक बार दुर्वासा ऋषि जैसा क्रोधी कोई साधू वहां से गुजरा। पुरइन के पत्तों पर पारे की तरह झलमलाते जल को देखा तो तट पर बैठ गया और झुककर अपना कमंडल आगे बढ़ा दिया, लेकिन यह क्या, कमंडल उसके हाथ से छूटा और गड़प की आवाज के साथ जल में डूब गया। उधर से राजा मोरध्वज का हरकारा आ रहा था। साधू ने उससे कहा, 'ताल में मेरा कमंडल डूब गया है, निकाल दे।' साधू की बात सुनकर हरकारे ने कहा, 'ताल बहुत गहरा है, मैं डूब जाऊंगा।' हरकारे का जवाब सुनकर साधू के नथुने फड़के और चेहरा तमतमा उठा। ताल को तो सुखाकर उसने खाक कर दिया और हरकारे को भस्म कर शाप दे दिया कि प्रेत बनकर जन्म-जन्मांतर तक इस ताल के आसपास भटकता रह। कहते हैं, तभी से वह हरकारा प्रेत बनकर सगरा ताल के आस-पास भटक रहा है। किसी ने उसे बछड़े की शक्ल में देखा तो किसी ने भैंसे के रूप में। कुछ लोगों के पीछे पड़ा तो उनकी जान ले ली। कुछेक लोगों को सिर्फ दिखायी पड़ा, बोला कुछ नहीं। जिनने मुंह,

उतनी बातें। नगरा तारा के इस प्रेत के कारण इधर के गावों में राजा मोरध्वज की कहानी सबकी जुबान पर है—मोरध्वज की दानवीरता की परीक्षा लेने के लिए इंद्र ने सिंह का रूप धारण किया और अपने भोजन के रूप में उनके पुत्र को मागा। रानी के साथ आरे से राजा मोरध्वज ने काट दिया था अपना लाडला पुत्र। आरे से पुत्र को काटते हुए राजा मोरध्वज और उनकी रानी की तस्वीरें गाव की अधिकाश चौपालों में हैं। हेमू की चौपाल में भी है।

नगरा तारा से थोड़ी ही दूर पर हेमू का गांव है—धामपुर कला। गाव से तीन किलोमीटर दूर ग्राम्य विद्यापीठ अचलगंज पढने जाते हैं वे चारों—गेंदनलाल, रामचरन, गयादीन और हेमू। वे तीनों आगे आ गये थे, उनसे पीछे हेमू नोन नदी पार कर रहा था, घुटनों तक अपना पाजामा समेटकर। कांधे में झोला लटका था, जिसमें उसकी किताबें थी, कापियां दवात और होल्डर वगैरह। साथियों से हेमू के पिछड़ जाने की वजह है उसकी मानीटरी। दर्जा सात का मानीटर है वह, और अब बालसभा का इचार्ज भी। इस नाते अन्य लड़कों की अपेक्षा उसकी जिम्मेदारिया कुछ अधिक हैं—कुए पर पड़ी रस्सी-बाल्टी चपरासी से उठवाकर स्टोररूम पहुचवाना, कोई कुर्सी-मेज या स्टूल बाहर तो नही रह गया, टाट-पट्टिया मैदान में तो नही छूट गयी, कोई खिड़की या दरवाजा तो खुला नही रह गया आदि-आदि देखना। किसी दिन बालसभा का विशेष कार्यक्रम हो तो उसके सामान की लिस्ट बनवाकर प्रधानाचार्य से सब कुछ समझना वगैरह बीस तरह के काम।

छुट्टी का घंटा बजने के बाद प्रधानाचार्य के कमरे में सब अध्यापक कुछ देर बैठकर ही बाहर निकलते हैं। मानीटरों को तभी फुर्सत मिल पाती है, हेमू को भी। इसीलिए वह साथियों से पीछे रह जाता है। कभी दौड़कर और कभी कुछ दूर तेज चलकर वह नदी तक उनके साथ आ जाता है। ग्राम्य विद्यापीठ प्राइवेट है, इसलिए सातवें दर्जेवालों की छुट्टी अब आठवें-वालों की तरह देर से होने लगी है। नोन नदी तक आते-आते सूरज डूबने लगता है और तब घनी पालोंवाले अरहर के खेतों के बीच से गुजरते हुए उन्हें डर लगता है।

उन तीनो की अपेक्षा हेमू निडर है और साहसी भी। पढने मे भी न सिर्फ उन तीनो से, बल्कि दर्जे भर मे सबसे तेज है। इसीलिए छठे दर्जे मे ही मानीटर रहा और सातवे मे पहुचकर बालसभा का उप-सभापति चुना गया। सभापति आठवे दर्जे का लडका था। बोर्ड के इम्तहान देकर वह चला गया तो सभापति का चार्ज हेमू को मिल गया। गाव के उसके तीनो साथी, ऊपर से तो नही, पर अदर ही अदर उससे ईर्ष्या करते है और स्कूल से लौटते समय दस-पाच मिनट रुककर उसका इतजार नही करते। हेमू प्राय: पीछे छूट जाता है, आज भी छूट गया था। स्कूल मे तो उसका नाम हेमचद चलता है, पर गाव-घर के लोग उसे हेमू कहते है।

वे तीनो हेमू से थोडा आगे सगरा ताल के पास तक पहुचे थे। वहा उन्हे छोटी-सी आकृति दिखी, मेमने जैसी। उनके पदचाप की आहट शायद उस तक पहुच गयी थी। म्या ऽऽऽ की आवाज हुई तो तीनो के रोगटे खडे हो गये। कलेजा धक्-धक् करने लगा। जहा के तहा जड हो गये वे, काटो तो खून नही। पैरो के नीचे की जमीन खिसकने लगी और पसीना छूट गया। धीरे-धीरे आकृति उनकी ओर बढ चली। दहशत के मारे तीनो के बदन कापने लगे। साधू द्वारा भस्म हरकारे का प्रेत है यह, उन्होने सोचा, पीछे पलटे और नोन नदी के तट पर बसे गाव मकरदापुर की तरफ भाग चले। पदचाप तेज हुई तो आकृति भी तेज चाल से उनके पीछे लग गयी। तब तो उन्हे पूरा विश्वास हो गया कि यह प्रेत ही है—साधू द्वारा भस्म राजा मोरध्वज के हरकारे का प्रेत! और यह विश्वास होते ही वे भागने लगे, उनके पीछे-पीछे मेमने जैसी वह आकृति भी।

मकरदापुर मे उनके गाव धामपुर कस्बा तक का इलाका समतल नही है। उत्तर पूर्व का क्षेत्र जरूर ऐसा है, जहा कवा है और हर तरह की फसलें होती हैं, पर मकरदापुर तक का ऊबड-खाबड क्षेत्र किसी पठारी इलाके जैसा लगता है, जहा पर सभी फसलें नही होती—ज्वार, बाजरा, अरहर

या फिर सरसों, गई और चटरी-मटरी ही होती है। खरीफ की फसल में अधिकांश लोग अरहर और ज्वार मिलाकर बो देते हैं। हरी या सूखी करबी काटकर पशुओं को खिला दी जाती है, परंतु अरहर खड़ा रह जाता है चैत तक, पकने के लिए। अरहर तब कटता है, जब रबी की सारी फसल कटकर खलिहान तक पहुंच जाती है। घनी पातोंवाले अरहर के इन्हीं खेतों के बीच से होकर उनका रास्ता है, पतली-पतली मेड़ों से गुजरता हुआ। मीलों तक चले आओ और किसी चिरई-चुनगुना तक के दर्शन न हों। दिखें भी तो खरगोश, लोमड़ी, सियार, भेड़िये या फिर बघर्रे।

बघर्रे के तो नाम से ही उनकी रूह कांप जाती है। कभी सियार, कभी भेड़िये और कभी बघर्रे उनका रास्ता काट जाते हैं तो वे सिहर उठते हैं, हालांकि आज तक किसी जनावर ने उनका रास्ता रोकने की हिम्मत नहीं की। फिर भी भेड़िये और बघर्रे बच्चों को खा जाते हैं, यह सुना और देखा हुआ दृश्य उनके लिए खौफनाक दृश्य तो है ही। और फिर तब तो और; जबकि पीठ पीछे सूरज डूब रहा हो और कीड़ों-मकोड़ों की आवाजों के साथ अंधियारा गहरा रहा हो। इस तरह घनी अरहर की पातोंवाले सुनसान रास्तों से गुजरते हुए बड़ी-बड़ी हिम्मतवाले कांप जाते हैं, फिर वे तो अभी बच्चे हैं, तेरह-तेरह, चौदह-चौदह साल के। एक बार उन्होंने खेत में एक बघर्रे को नन्हा-सा बच्चा खाते हुए भी देखा था। उन्हें देखकर वह लहू-लुहान बच्चे को मुंह में दबाकर भाग गया था और ये डर के मारे कांपते हुए एक-दूसरे को पकड़कर गांव आये थे, बजरंगबली का सुमिरन करते हुए।

पीछा करते प्रेत के डर से भागते हुए वे तीनों मकरंदापुर पहुंचे, इसके पहले ही हेमू उन्हें दिख गया। उसे देखकर वे रुके और फूलती हुई अपनी सांसें रोककर पीछा करती हुई आकृति की ओर इशारा करके बोले, 'प्रेत। सगरा का प्रेत!' हेमू ने देखा—मेमने जैसी कोई आकृति तेजी से उनके पीछे आ रही थी और उनके रुकते ही थोड़ी दूर पर रुक गयी है।

प्रेत के नाम से हेमू का शरीर भी हिल गया। वे तीनों डर के मारे कांप

रहे थे। हेमू ने भी एकबारगी सोचा—हो, न हो, सगरा ताल का प्रेत ही हो और मेमने की शक्ल में छल कर रहा हो। उसने सुना था, भूत-प्रेत लोहे से डरते हैं। पास में चाकू-छुरी हो तो कुछ बिगाड सकना तो दूर, पास तक नहीं फटकते। क्लास-टीचर का कलम छीलनेवाला चाकू उसके बस्ते में पड़ा है, उसको याद आया तो उसने झट से निकाल लिया। निकाल ही नहीं, खोल भी लिया। बस्ता गेंदनलाल के हवाले किया और प्रेत से भिड़ने की हिम्मत जुटाने लगा। आसपास उसके तीनों साथी खड़े थे, इसलिए उसे उतना डर नहीं लग रहा था, अकेले होता तो शायद इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाता। और फिर मकरंदापुर के लोगों की आवाजें उसके कानों में पड़ रही थीं, इसलिए भी खुद को तैयार करने में उसे ज्यादा वक्त नहीं लगा।

सीधे हाथ में खुला हुआ चाकू लेकर मेमने का कान पकड़ने के लिए वह पैंतरे पर आ गया। जैसे-जैसे वह मेमने की ओर बढ़ा, वैसे-वैसे मेमना भी उसकी ओर बढ़ आया। और फिर हिम्मत जुटाकर हेमू ने उसका कान पकड़ लिया।

एक तरफ तो मारे भय से उसका कलेजा दहल उठा, दूसरी तरफ कुछ भी न होने से उसे इत्मीनान हो गया कि यह प्रेत नहीं है। प्रेत होता तो चाकू के कारण गायब हो जाता। बचपन में उसे बताया गया था कि भूतों और प्रेतों के पांव उल्टे होते हैं और जमीन से एक इंच ऊपर भी। हेमू ने मेमने के पांव देखे—वे सीधे और पूरी तरह जमीन पर थे। तभी उसे राजस्थान से आनेवाले ऊंटों और भेड़ों के झुंडों का ध्यान आ गया। हेमू ने उसकी आंखें देखीं, उन पर सफेद पर्त चढ़ी हुई थी। तब उसे विश्वास हो गया कि यह प्रेत नहीं, मेमना है। अपने झुंड से बिछड़कर यहां भटक गया और इन लोगों ने इसे सगरा ताल का प्रेत समझ लिया है।

ऐसे जानवरों को खुद की आंखों से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, वे झुंड के अन्य जानवरों की पदचाप के सहारे आगे बढ़ते रहते हैं। और तब, आहट के सहारे चलते रहने की उनकी आदत हो जाती है। कभी-कभी ऐसे जानवर किसी झाड़ी, नाली या गड्ढे में उलझकर पीछे छूट गये तो फिर हमेशा-हमेशा के लिए अपने झुंड से बिछड़ जाते हैं। ऐसे अंधे-अपाहिज हुए

जानवरों को झुंड-मालिक जान-बूझकर पीछे छूट जाने देते हैं और फिर वे किसी के द्वारा हलाल करके खा लिये जाते हैं।

रबी की फसल लगभग कट चुकी थी और जैसा कि प्रायः हर वर्ष होता है, रबी की फसल कटते ही ऊंटों और भेड़ों के झुंड उत्तर भारत में आ धमकते हैं, इस साल भी आने शुरू हो गये थे। पहले गायों के भी आते थे, पर अब वे कभी-कभार ही दिखते हैं। ऊंटों का आना भी कम हो गया है, भेड़ें ही अधिक आती हैं और फसल कटे खेतों को चरती हुई चली जाती हैं। जहां शाम हुई, डेरा पड़ गया। सबेरा हुआ, चल दिये। एक बार हेमू ने बूढ़ी अम्मां से पूछा था, 'इत्ती म्याणें कहां तें अउती हैं अम्मा ?'

'राजिस्थान तें।'

'काहे ?'

'गरमी मा हुन सूखा पड़ि जात है, तौ जानवर तौ जानवर, आदमी लग भूखन-पिआसन मरन लागत हैं; तब उइ लोग अपन-अपन जानवर लै कै यहँ तन चले आवत हैं, अउर जब लग पानी बरसत है घूमत-फिरत फिरि अपने देश पहुंचि जात हैं।'

हेमू ने मेमने को गोद में उठाया और साथियों के साथ घर की ओर चल दिया। बप्पा के डर से उसने चाहा कि गेंदनलाल मेमने को अपने घर लेता जाये, अगले दिन अम्मा से पूछकर वह उसे ले लेगा, पर अपने बाबा के कारण गेंदनलाल ने इन्कार कर दिया। रामचरन को भय था कि उसका काका रात में ही मेमने को हलाल कर देगा। गयादीन की झोंपड़ी से भेड़िया उसे उठा ले जा सकता था। अंत में हेमू ने ही हिम्मत जुटायी।

ज्यों-ज्यों घर करीब आ रहा था, हेमू की धुकधुकी तेज हो रही थी। अम्मा और बूढ़ी अम्मा को तो वह मना लेगा, पर बप्पा के सामने उसकी जान सूख जाती है। बप्पा ने हालांकि कभी उस पर हाथ नहीं उठाया, पर उनका रोब ही कुछ ऐसा है कि अम्मा को छोड़कर कोई उनसे जुबान नहीं

लड़ाता—न बड़े बप्पा, न अनी जीजी और न ही बूढ़ी अम्मा। छोटी मुन्नी जरूर उनकी मूंछें मरोड़ देती है और वे कुछ नहीं कहते।

हेमू सोच रहा था कि मेमने को देखते ही बप्पा भड़क उठेंगे और हुआ भी यही। जब वह घर पहुंचा, बप्पा सानी कर रहे थे। उन्होंने घूरकर उसे देखा। फिर भी, उनकी उपेक्षाकर देहरी लांघता हुआ वह आंगन में आ गया। खूंटे में बकरा टांगकर इत्मीनान से खड़ा हो पाये इसके पहले ही सानी की बाल्टी लिये बप्पा आ धमके। नाबदान पर बाल्टी रखकर वे उसके करीब आये और पूछने लगे, 'कहां ते पकरि लायेव एहका ?'

'सगरा पर मिमिया ?'

'हयो तन ठीक है लेकिन एहका बधिहौ कहा ?'

'आंगन मा बंधो रही।'

'बंधो रही, लेकिन हगी-मूती भी मधई ना ?'

'तौ का होइ ?'

'होइ यो कि गउ पाप कै भेड़हना-बघरंवा घरै घुमि अइहै, अउर एहका उठा लइ जइहै। कहव मुन्नेवै का उठा लइ जाय।' कहकर बप्पा घिनौची पर रखी बाल्टी में मग्गे में पानी लेकर हाथ धोने लगे। इतने में हेमू को मौका मिल गया। अम्मा का हाथ अपने सिर पर रखकर उसने कसम दे दी और मेमना उनकी गोद में छोड़कर बाहर निकल गया।

जब कभी बप्पा से हेमू का आमना-सामना होता होता है, अम्मा की सामने कर वह खिसक लेता है। मेमने को लेकर अम्मा अटारी पर चढ़ गयी। बप्पा कुछ देर बड़बड़ाते रहे और मेमने को कसाई के हाथ बेच देने की धमकी देकर बाहर चले गये।

थोड़ी देर बाद लौटकर हेमू अटारी पर पहुंचा। दीये की रोशनी में मेमने की आंखों में जाला देखकर अम्मा उससे बोली, 'कहूं ते कुदुरू केरि पाती ले आव। बोम्बार रसु डारे ते जाला कटि जई।' दिमाग पर थोड़ा-सा जोर डालते ही हेमू को याद आ गया कि गांव से बाहर शंकरजी का मंदिर है। मंदिर की पिछली दीवार पर बजरंगबली की मूरत है। मूरत के सामने कड़ैल का बिरवा है। कुदुरू की कुछ बेलें उस पर फैली हैं। याद आते ही वह भागा तो फिर मंदिर के सामने ही जाकर सांस ली। सास

रोककर कडैल पर चढ़ा और चंद्रमा की रोशनी में कुंदुरू की कुछ पत्तियां चुन लीं।

घर पहुंचकर अम्मा की मदद से उसने मेमने की आंखों में कुंदुरू की पत्तियों का रस निचोड़ दिया। ओखली में पड़े चने के छिलके बूढ़ी अम्मा टोकरी में भर लायीं और मेमने के सामने रख दिये तो वह हफर-हफर कर खाने लगा।

रात में हेमू अटारी पर ही सोया, मेमने के पास। अम्मा, बूढ़ी अम्मा, मुन्नी और अलो जीजी भी बगल में सो रही थीं। अवाई के अंदर वह मेमने की खुर-खुर होते ही हेमू चौकन्ना हो जाता। मेमने को कहीं कुछ और न हो जाये, इस आशंका से उसे रातभर नींद नहीं आयी। वह भगवान से प्रार्थना करता रहा कि मेमने की आंखें ठीक हो जायें। वैसे अम्मा की बतायी हुई दवा पर उसे पूरा भरोसा है। अम्मा गांव भर की घरेलू डॉक्टर जो हैं।

किसी को कुछ होता है तो भागा-भागा चला आता है अम्मा के पास, और अम्मा कुछ न-कुछ बता ही देती हैं—पैर में ठूंठा धुस जाये तो गरम घी का फोहा रख दो। मोच आ जाये तो बिना बच्चेवाली औरत के चुटीले के धागे बांध दो। गमहरी-विषहरी हो जाये तो लहसुन बांटकर बांधो। पेट में शूल का दर्द उठे तो गुड़ और चूने की गोली बनाकर निगल लो। लाल-लाल चकत्तेवाली गिम्मनी हो जाये तो सीरा में गेरू घोलकर चुपड़ दो। ऐंठ-ऐंठकर नन्हा बच्चा रो रहा हो तो हींग मिला कड़वा तेल गर्म कर पेट पर मल दो, वगैरह-वगैरह पचासों दवाइयां अम्मा को जुबानी याद हैं और गांव-घर में यही दवाइयां चलती भी हैं।

मेमने को जरूरत पड़ी तो बिना पूछे ही अम्मा ने बता दिया—कुंदुरू की पत्तियों का रस। अम्मा जैसी बतानेवाली और हेमू जैसा माननेवाला। कोई और होता तो कल पर टाल जाता, पर हेमू को बूढ़ी अम्मा ने बचपन से ही रटवा दिया था, 'काल्हि करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब, पल में परलय होयगी, फेरि करैगो कब्ब?' इसलिए अंधेरे के बावजूद हेमू गांव से बाहर शंकरजी के मंदिर तक गया और कडैल पर चढ़कर कुंदुरू की पत्तियां तोड़ लाया।

रात मे पेड़ पर चढ़ने की बात बप्पा को पता लग जाये तो आसमान सिर पर उठा लें। बप्पा रात मे किसी को भी पेड़ पर चढ़ने नही देते। कहते है कि रात मे पेड़ो पर भूत-प्रेत सोते है। पेड़ पर चढ़कर जो उन्हें जगाता है, उसे नीचे फेंक देते हैं और वह मर जाता है, पर हेमू को भूतों-प्रेतो के अस्तित्व पर कभी विश्वास नही होता।

मेमना कहने मे अम्मा गड़बड़ा जाती तो उन्होने मेमा कहना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद हेमू की तर्ज पर मेमा को मेमू कर दिया गया। बहुत दिनो तक बप्पा मेमने से कटे-कटे रहे और उन्होंने उसमे कोई रुचि नही ली। हेमू द्वारा सिखाये जाने पर धीरे-धीरे वह इशारो पर चलने लगा। मेमना, अब मात्र मेमना नही रह गया था मेमू बनकर घर के किसी नन्हें-मुन्ने जैसा सबका खिलौना हो गया था।

दरवाजे पर खड़ा हेमू उसे आवाज देता, मेऽमूऽऽ ''' और फुदकता हुआ मेमू उसके पास आ जाता। रसोई मे आटा गूथती अम्मा उसे पुकारती तो वह रसोई मे हाजिर हो जाता। बरोठे मे पखा झलती बूढ़ी अम्मा गुहार लगाती तो मेमू उनके आचल मे जा दुबकता।

एक दिन मेमने के साथ चल रहे इस खेल में अनायास बप्पा भी शामिल हो गये। न जाने कैसे उनके मुह से भी निकल गया, 'मेऽमूऽ' और फुदकता हुआ मेमू पास पहुंचकर उनके पैर चाटने लगा। फिर तो बप्पा से नही रहा गया। उन्होने उसे गोद मे उठा लिया। सारा बैर, सारा गुस्सा खत्म हो गया। इसके पहले उन्होने मेमू को कभी आवाज नही दी थी और बिना आवाज के वह कभी उनके पास गया भी नही। पशु था तो क्या हुआ, प्रेम और बैर के हाव-भाव तो पशु-पक्षी भी समझ ही लेते है।

बूढ़ी अम्मा जब कभी मेमू को नहला देती तो वह झक्क-सफेद निकल आता। तब हेमू उसे खूब दुलराता, उसके मुलायम बालो को सहलाता, गोद मे लेकर इधर-उधर घुमाता, गले से लगाता और कोई तराना भी छेड़ देता। शुरू-शुरू मे मेमू जगह-बेजगह हग-मूत देता तो बप्पा बुरी तरह से उखड़ जाते, पर अब उसके हगने-मूतने के स्थान तय हो गये थे।

रघुनाथ टेलर ने हेमू को बताया कि कानपुर में ऊन की बड़ी मिल है—लाल इमली, जहां पर ऊन के धागे और गुच्छे बनते हैं, ऊनी कपड़े भी। कई बार अचलगंज के बाजार में हेमू ने ऊन के गुच्छों पर लाल इमली छपा हुआ देखा है। एक दिन वह रघुनाथ टेलर से कैंची मांग लाया और मेमू के शरीर की मुलायम-मुलायम ऊन काटने लगा तो बूढ़ी अम्मा ने उसे टोक दिया, 'ई ऊन बयार का करिहौ हेमू!'

'लाल इमली भेजिबे।'

'हुन का होई?'

'ऊन की लच्छी बनि जइहैं।'

'फिर?'

'अम्मां जीजी हमरी खातिर सूटर बिनि द्याहैं।'

'फिर?'

'तुम्हार, अम्मा बयार, बप्पा बयार, अउर फिर धीरे-धीरे सबके सूटर बनि जइहैं।' हेमू की यह बात बूढ़ी अम्मा ने सुनी, बप्पा और अम्मा को बतायी तो सबके सब मुस्करा दिये।

रघुनाथ टेलर ने ही बताया था कि भारत से आस्ट्रेलिया और कनाडा के लिए जो भेड़ें निर्यात की जाती हैं, उनके बहुत पैसे मिलते हैं। इस बात ने हेमू की कल्पना को पर दे दिये और वह उड़ चला—जब मेमू बड़ा हो जायेगा, तब वह उसे आस्ट्रेलिया भेजेगा। उससे जो पैसे मिलेंगे, वह तमाम सारे मेमने खरीदेगा और जब उन्हें बड़ा करके बेचेगा तो उसके पास इतना पैसा हो जायेगा, जितना कि गांव में किसी के भी पास नहीं होगा और तब वह गांव का सबसे धनी आदमी हो जायेगा।

अपनी यह योजना हेमू ने बूढ़ी अम्मा को बतायी। बूढ़ी अम्मा ने जब उसकी अम्मा से कहा तो वे हंस दीं। अम्मा से होती हुई हेमू की योजना जब बप्पा तक पहुंची तो वे हंसे नहीं, गंभीर हो गये। उन्हें लगा कि जैसे पत्थर का कोई टुकड़ा उनका सिर फोड़ गया हो। वे जो नहीं चाहते, हेमू वही सोचने लगा है—भेड़-बकरी-पालन जीवन-यापन का निकृष्टतम

घघा। हेमू की इस सोच की वजह है मेमू, सगरा ताल पर मिला मेमना, भेड़ का बच्चा, बप्पा ने सोचा और निर्णय कर लिया कि अब मेमने को एक दिन भी घर में नहीं रहने देंगे, नहीं तो हेमू उस रास्ते पर चल पड़ेगा, जिसे वे वर्जित कर चुके हैं, कर ही नहीं, उसे पूरी तरह से छोड़ चुके हैं। चार बीघे अच्छी और चौदह बीघे नाले-खाले की ऊसर-बंजर जमीन उनके पास है। किसी तरह से गुजर हो ही रही है। पढ़-लिखकर हेमू कहीं अच्छी नौकरी ढूढ़ ले तो घर का हुलिया बदल जायेगा, बप्पा ने सोच रखा है, पर मेमू ने हेमू की सोच ही बदल दी है और सोच बदल जाने से क्या नहीं हो सकता, वे अच्छी तरह जानते हैं। खुद उनकी जिंदगी इसका जीता-जागता सबूत है।

तब वे तेरह-चौदह साल के रहे होंगे। हुकूमत अंग्रेजों की थी और उनके जैसे लोगों के पढ़ने-लिखने पर ज्यादा जोर नहीं दिया जाता था। पढ़ाई-लिखाई ज्यादातर ब्राह्मण ही करते थे, कायस्थ या फिर कुछ और लोग, जिनकी किस्मत अच्छी होती थी पढ़-लिख जाते थे, पर उनके जैसे अहीर-गडरियों की किस्मत में पढ़ना-लिखना नहीं लिखा होता था। उनकी किस्मत में तो अपना बचपन भेड़-बकरियों के साथ इधर-उधर गुजार देना ही लिखा रहता था।

सवेरा होते ही भेड़-बकरियों के साथ निकल जाते थे और इस हार से उस हार तक सिगरी या महुए के पत्ते काट-काटकर उन्हें खिलाते रहते। ओले पड़ते, चाहे धूप सिर चटकाती या बर्फानी हवाएं कनपटी तोड़ती, मूसलाधार वर्षा कहर बरपा करती या आंधी-तूफान कनपटी से कनपटी बजाते, बप्पा को भेड़-बकरियों का झुंड संभालना ही होता था। भेड़ियों-बघर्रों से उनकी रक्षा करनी ही होती थी। कई बार उन्होंने भेड़ियों-बघर्रों से उन्हें छीन लिया, कई बार वे देखते रह गये। कई मेमनों को भेड़िये खा गये और उन्हें तब पता चला, जब शाम को गिनती में कोई मेमना गायब मिला।

एक मर्तबा मेमने को बचाने के चक्कर में भेड़िये ने उलटकर उन्हीं पर

हमला कर दिया। यह तो गनीमत रही कि उधर से रघुनाथ टेलर के काका आ गये, नहीं तो न जाने क्या होता। उस दिन तो वे इतने घबरा गये कि महीने भर के अंदर सारी भेड-बकरिया अचलगंज के बाजार मे बेच आये। दो ठऊ गायें ले लीं और खेती-बाडी संभालने लगे।

वह दिन था कि आज का दिन है—उनके घर मे कभी भेड-बकरिया नही आयी। एक तो उन्हें चराने का हाड़-तोड़ काम, ऊपर से भेडियों-बघरों का डर। बप्पा इस बात से ही उखड़ जाते हैं कि उनके घर में भेड-बकरिया पाली जायें और उनकी किसी संतान को उनकी तरह जंगल-जंगल भटकना पड़े। देश के आजाद होने के बाद शिक्षा का महत्व उनकी ही नहीं, हर आदमी की समझ मे आ गया है—बिना पढ़े नर पशु कहावें। नौकरी न भी मिले, तो भी बप्पा चाहते हैं कि उनके बाल-बच्चे उनकी तरह गवार न रहें। आजादी ने कुछ और दिया हो, न दिया हो, पर देश के हर बच्चे के लिए पढ़ाई-लिखाई के दरवाजे तो खोल ही दिये है। अब वह किस्मत का नही, बच्चो के कर्म का लेखा हो गयी है।

और फिर हेमू तो दर्जे मे हमेशा अव्वल रहता है। इसलिए भी बप्पा कतई नही चाहते कि हेमू का मन पढ़ाई के अलावा किसी और काम मे रम जाये। वे देख रहे थे कि जब से मेमू आया है, अपनी पढाई की उपेक्षाकर हेमू उसमे कुछ ज्यादा ही रुचि लेने लगा है। इसी आशका मे बप्पा ने पहले दिन ही मेमना लाने पर हेमू का विरोध किया था, अन्यथा मेमना पकड़ने का पूरा किस्सा जानकर उनका मन हुआ था कि हेमू को छाती से लगा ले, उसकी हिम्मत की दाद दें और पीठ ठोंककर उसका हौंसला बुलद करें, लेकिन हेमू की योजना जानकर उनका मन आशका के सैलाब मे डूब गया। घर मे यदि मेमू रहा तो उनके किये-कराये पर पानी फिर जायेगा, सोचते हुए बप्पा ने निर्णय कर लिया कि रात मे वे मेमने को चुपके से बवा पार छोड आयेंगे। सब लोग सोते रहेंगे, किसी को कुछ पता भी नहो चलेगा और सुबह तक कोई न कोई जनाउर मेमने का काम तमाम कर देगा।

रात के बारह बजे होंगे। वे चोरो की तरह उठे और मेमू को गोद मे लेकर

चल दिये। बवा पारकर उन्होंने उसे एक गड्ढे मे ढकेल दिया और पीठ पीछे मुड़कर घर की ओर भाग खड़े हुए। एक-दो खेतो की मेंड़े ही पार कर पाये होंगे कि मेमना भागकर उनसे आगे निकल गया। वे रुक गये तो मेमना भी रुक गया और फिर पास आकर उनके पैर चाटने लगा। गुस्से मे उन्होंने उसे कसकर लात जमा दी तो वह घुसमुड़ियाकर गिर पड़ा। वे उसे फिर वापस ले चले और एक गहरी खंती मे फेंक दिया। काफी दूर से घूमकर घर की तरफ थोड़ा ही चले होंगे कि मेमना फिर उनके पीछे था। इस बार मेमने पर उन्हें गुस्सा नहीं आया, उन्होंने उसे लात भी नहीं जमायी। इसमें इस बेचारे का क्या दोष, सोचते हुए उसे अपने पीछे आने दिया और घर आकर बरोठे मे खूटे से बाध दिया और सबेरा होते ही घोषणा कर दी कि आज से मेमू का सारा काम वे खुद करेंगे, हेमू उसे छुएगा भी नही, हेमू कुछ नही करेगा, हेमू सिर्फ पढेगा—पढाई, पढाई और पढाई।

बवे मे धामपुर कला के लिए अलग से कुलाया नही है, किशुनपुर के साझे मे है, किशुनपुर के पास। हफ्ते मे चार दिन का पानी आता है किशुनपुर और तीन दिन का आता है धामपुर कला। धामपुर कला से कुलाबा इतनी दूर है कि गाव के आधे से अधिक खेतो तक उसका पानी पहुच ही नही पाता। वे रामभरोसे बोये और काटे जाते है। एक भरोसा और है— चंद-रोजा कुलावे का, जो धामपुर कला के ठीक सामने है, लेकिन उसका चलना, न चलना निर्भर करता है, पतरावल हरीराम की मेहरबानी पर। हरीराम की मेहरबानी का मतलब है तीन रुपये फी-बीघा अलग से उसकी नकद भेंट-पूजा। पहले एक रुपया फी-बीघा पडता था। इमरजेंसी मे दो रुपया फी-बीघा हो गया। और जब इमरजेंसी हट गयी तो उसने तीन रुपया फी-बीघा की माग की, लेकिन तब लोग निडर हो गये थे! उन्होंने सिचाई-विभाग के ब्रांच ऑफिस से लेकर हेड ऑफिस तक शिकायत पहुंचा दी।

शिकायत से कुछ और तो नही हुआ, पर बाईस साल पुराना चंदरोजा मूंजा लगवाकर बद करवा देने की बजाय उखड़वाकर ब्रांच ऑफिस पहुचवा

दिया गया, जबकि बार्दन माल से चलते पुराने और मुस्तकिल हो चुके चदरोगा बुनावे को उखड़वाकर पूरे गांव की फसल को सुखा देने का अधिकार बड़े से बड़े अफसर को भी नहीं है, पर इंजीनियर और अफसर प्रतिमाह मिलनेवाली हलो के कारण ऐसी शिकायतों को रद्दी की टोकरी में फेंकने के आदी जो हो गये हैं।

परिणाम जो होना था, वही हुआ। कुछ खेत बिना पानी के सूख गये। कुछ कम पानी मिलने के कारण हल्के पड गये और ऐसे खेतों में हेमू के बप्पा के खेत भी थे। पानी की कमी से फसल हल्की पडी, सो पडी, जो कसर बाकी रह गयी थी, ओलों ने पूरी कर दी। आधे से अधिक दाने खेतो में ही छिटक गये। बप्पा के हाथ जितना अनाज लगा, वह दो महीने भी चलनेवाला नही था। बप्पा माथा पकडकर बैठ गये। एक दिन रेडियो ने बताया कि मुख्यमंत्री ने घोषणा की है कि जिन इलाकों में ओलों से फसलें क्षतिग्रस्त हुई हैं, वहा के किसानों से सिचाई-लगान की वसूली में जोर-जबरदस्ती नही की जायेगी। अन्य किसानों के साथ हेमू के बप्पा ने भी राहत की सास ली और जनता सरकार की किसानपरस्ती की प्रशंसा के पुल बाध दिये।

मुख्यमंत्री की घोषणा के कुछ ही दिन बाद किसानों के पास सिंचाई और लगान वसूल करनेवाले अमीनों के हरकारे पहुंच गये। मुख्यमंत्री की घोषणा का उन पर कोई असर नही हुआ, क्योंकि उनके पास लिखित आदेश नही पहुंचे थे। इसलिए वे किसानों के पास पहुंचे और समय से पहले पहुंचे। जो किसान सिंचाई-लगान दे सकते थे, एक-एक कर दे आये। जो नही दे सकते थे, उन्होंने प्रार्थनापत्र लिखकर एम० एल० ए० को दिया कि मुख्यमंत्री तक पहुंचा दें, पर हफ्तों तक कोई जवाब नही आया। अमीन का हरकारा जरूर अपनी गुहारों से बिला नागा उन किसानों की नीद हराम करता रहा, जो सिंचाई और लगान नही दे पाये थे। कुर्की और वारंट की बातें होने लगी।

कोई कहता कि नये कानून के चलते कुर्की नही हो सकती। कोई कहता कि जेल हो जायेगी। कोई कहता कि कुछ नही होगा, मुख्यमंत्री सिंचाई-लगान माफ कर देंगे। हेमू के बप्पा को नया कानून तो नही मालूम था, पर

पुराना कानून उन्होंने देखा था कि किसानों को उनके खेतों से बेदखल तक कर दिया जाता था। बप्पा सोच नहीं पा रहे थे कि करें भी तो क्या। अनाज बेचकर सिंचाई-लगान चुका भी दें तो अगली फसल तक खायेंगे क्या? उस दिन बप्पा इतने गुमसुम हो गये कि खाना तक नहीं खाया। शाम को मुन्नी जब उन्हें खाने के लिए बुलाने गयी तो भी उन्होंने इन्कार कर दिया। लौटकर मुन्नी ने बूढ़ी अम्मा से पूछा, 'बप्पा दुपहरी का खाना नाइ खाग्रो रहेनि, अबहुन नाइ खा रहे हैं, का बात है?'

'परेशान हैं बिचारे।'

'काहे?'

'लगान-सिंचाई दे का रुपया नांइ हैं। लंबदार बयार कर्जव दें का है।'

'अपने खेतवन लग पानी तब पहुंचो नांइ रहै, फिरि सिंचाई कइसि आयी है?'

'इयो तौ पतरावल अऊर अमीनै जानैं।'

'बप्पा देंय ते इनकार काहे नांइ करि देत हैं?'

'जेहेलि न होइ जई।'

'तब बप्पा सोमनाथ काका कि नांय जेहेलि काहे नांइ चले जात हैं?' अबोध मुन्नी के इस प्रश्न ने बूढ़ी अम्मा को निरुत्तर कर दिया और वे सोचने लग गयी कि अंग्रेजी राज और गांधी के इस रामराज में क्या फर्क है? बहुत सोचने पर भी कोई खास फर्क उन्हें नजर नहीं आया। गांववालों की जिंदगी में आज भी वही बदहाली और पुलिस-अमीन का आतंक व्याप्त है।

स्कूल से पढ़कर लौट रहे थे वे चारों—मोहनलाल, रामचरन, गयादीन और हेमू। नोन नदी का पाट दूर पीछे छूट गया था और सगरा ताल की सरहद छोड़कर वे अपने गांव के करीब आ गये थे। उन्हें घर पहुंचने की जल्दी थी, भूख जो लग रही थी जोरों की। सुबह नौ बजे के खाये हुए थे और अब सांझ घिरने को थी। नाच रही थी उनकी आंखों में गोहचना की मोटी-मोटी

रोटियां और अरहर की गाढ़ी-गाढ़ी दाल। घर पहुंचते ही उन्हें रोटियां न मिलें, ऐसा कभी नहीं होता। उनकी मांओं को अपने छौनों की भूख का पता रहता है। हर हालत में दोपहर को इतना खाना बनाती हैं कि उनके लिए दाल और दो-चार पनेथियां बच ही जायें। उन्हें वे चौके की खिड़कियों में रखकर ही खेत-खलिहान जाती हैं। स्कूल से लौटने पर वे भी इंतजार नहीं करते कि कोई आकर उन्हें परोसे। खूंटे में बस्ता टांगते हैं। लोटा उठाकर घिनौंची पर रखे घड़े से पानी लेकर हाथ-पांव धोते हैं और खाने पर टूट पड़ते हैं।

हेमू के घर के पिछवाड़े से आता हुआ बुद्धन कसाई उन्हें दिखाई पड़ा। उसकी गोद में मेमना था। हेमू ने देखा—उसका मेमू है। पल भर के लिए हजारों-हजार बिजलियां हेमू के सामने चमचमा उठीं। उसे समझने में देर नहीं लगी कि बुद्धन कसाई के हाथों में उसका मेमू क्यों है? खड़ाऽऽऽक् बुद्धन कसाई का गड़ासा चलेगा और फिर सवेरे तक मेमू के टुकड़े गांव-गांव बिक जायेंगे। मेमू को वह इस तरह नहीं मरने देगा, उसने क्षणांश में निर्णय ले लिया। एकबारगी तमाम सारे दृश्य उसकी नजरों से गुजर गये—पानी के जहाज पर आस्ट्रेलिया के लिए रवाना होता चक्क-भक्क मेमू, लाल इमली में मेमू की ऊन से बनती लच्छियां, लच्छियों से स्वेटर बुनती अती जीजी''' और फिर हेमू का बस्ता गेंदनलाल के हाथ में चला गया। चीते की-सी फुर्ती न जाने कहां से आ गयी दिनभर के भूखे-प्यासे हेमू में। वह बुद्धन कसाई पर झपटा और मेमू को इस तरह छीन लिया, जैसे बघर्रे के जबड़ों में फंसे अपने बेटे को छीन लिया हो। हक्का-बक्का रह गया बुद्धन कसाई और हेमू के तीनों साथी भी। बुद्धन कसाई जब तक कुछ सोचे-समझे, तब तक हेमू काफी फासला तय कर चुका था।

दुआरे ही चारपाई पर बप्पा बैठे थे, मैले-कुचैले नोट हथेली में दबोचे हुए। मेमू को गोद में लिए हांफते हुए हेमू को उन्होंने देखा तो अचंभे में पड़ गये। सांस रोककर वह बप्पा से कुछ कह पाये, इसके पहले ही बुद्धन आ खड़ा हुआ और तब बप्पा को समझने में देर नहीं लगी कि माजरा क्या है!

'मालिऽऽक्''''''' बुद्धन कसाई उनसे कुछ कह पाये, इसके पहले ही कठोर लहजे में उन्होंने हेमू से कहा, 'मेमा बुद्धन का दइ देव।'

'नाही।'

'काहे ?'

'मेमू कसाई के घरै न जई।'

'तब नाइ खायो ?'

'न ऽ......'

'हम कहत हन सरऊ, चुप्पै दइ देव, नाही तब याकै रापट मा दिमाक् सही होइ जई।'

'मेमू का हम नाये रहन, येका हम पालो हय, इयो हमार आय।'

'मेमू के बाप, हम कहन हन कि दइ देव।'

'नै देबे......' हेमू के स्वर में दृढ़ता थी। मेमू की खातिर पहली बार उसने हिम्मत की थी। उसके स्वर की दृढ़ता ने बप्पा को अंदर तक हिला दिया। मारे क्रोध के उनके नथुने फड़क उठे और जबर हाथ हवा में लहराकर हेमू के गाल पर जा पड़ा—तड़ाऽऽऽक्। हेमू इसके लिए तैयार न था। वह लड़खड़ाकर खूंटे पर जा गिरा। उसका माथा फूट गया और खून की धार बह चली। मेमू छिटककर अलग जा गिरा, जिसे उठाकर बप्पा ने फिर बुद्धन कसाई के हवाले कर दिया। उसके तीनों साथी चुप खड़े तमाशा देख रहे थे। मेमने को लेकर बुद्धन पिछवाड़े की डगर निकल गया और बप्पा नबरदार के घर की तरफ चले गये।

दरवाजे की ओट बरोठे में खड़ी अम्मा बाहर आयी और हेमू के माथे का खून पोछती हुई, बोली, 'लवरदार बयार कुछु कर्जा रहै, उइ दिन उनतें लइ कम लगान-सिचाई दीनि गै रहै। वें बयार वाहि रहै, बप्पा दइ नांइ पाये, तउनै आज लवरदार उल्टा-सीधा बकिगे रहै। सुबा वखत बुद्धन आ गा तौ बप्पा मेमू का बेचि दीन्हिन।' कहते हुए अम्मा खुद रुआसी हो उठी। अम्मा की बात सुनते हुए हेमू की नजर चौपाल में टगी तस्वीर पर जा अटकी—राजा मोरध्वज रानी के साथ आरे से अपने पुत्र को काट रहे थे। और फिर कुछ पल बाद हेमू की नजर नीचे चली गयी—अम्मा के पैर खाली थे, उनकी पायलें भी उतर गयी थी।

1978

गिद्ध और गिद्ध

दूसरी मंजिल के अपने कमरे से निकलकर आँखें मिचमिचाता हुआ नीचे आया। नल को खोला तो शू-शूं की आवाज करता हुआ फिस्स हो गया और मेरी बाल्टी रीती की रीती रह गयी। मकान मालकिन से चार-पांच मग पानी लेकर किसी तरह से काम चला लिया और जीना चढ़कर कमरे में पहुंच गया। तौलिये से मुंह पोंछने के बाद शीशा-कंघा उठा लिया। देखा तो पाया कि तौलिये के रेशे चेहरे पर जगह-जगह चिपक गये हैं। पैंट की जेब से रूमाल निकाला और उन रेशों को साफ कर दिया। दरअसल, यह तौलिया काफी पुराना हो चुका है, पूरे दो साल का। उपयोग के काबिल अब यह कतई नहीं रह गया है। अब तक मुझे नया तौलिया ले लेना चाहिए था। कई बार सोचा भी, पर इतने पैसे कभी बच नहीं पाये कि नया तौलिया ले आता।

रूमाल ने उन रेशों को तो साफ कर दिया, किंतु बदबू की एक लहर छोड़ गया। एक हफ्ते से अधिक हो गया, रूमाल क्या, कोई भी कपड़ा धो नहीं पाया हूं। साबुन होता तो धो भी डालता। एक दिन सोचा कि पानी से ही धो डालूं, लेकिन फिर नहीं धोया। सोच लिया कि जब साबुन लाऊंगा, तभी धोऊंगा। बनियाइन तो बहुत गंदी हो गयी है, मैली-चीकट।

गनीमत है कि पैंट-बुशर्ट रंगीन है और गंदी होने के बावजूद उतनी गंदी नहीं दिखती।

बालों में कंघा घुमाया तो ढेर सारा कचरा निकल आया। दरअसल, कई रोज से मैं नहा नहीं पाया हूं। जब मैं घर पर होता हूं तो नल में पानी नहीं आता और जब नल में पानी आता है, तब मैं घर पर नहीं होता, हालांकि मैं घर पर होता ही कब हूं। दिन भर तो कालेज, स्कूल और ट्यूशनों में मारा-मारा फिरता हूं। रात में साढ़े नौ बजे तक फुर्सत पाता हूं तो फिर भूख इतना जोर मारने लगती है कि नहाने का खयाल और मन ही नहीं रहता।

कालेज का समय हो गया था। मैंने नोटबुक उठायी और चल दिया। कालेज पहुंचा तो पता चला कि मैनेजर का बाप मर गया है, इसलिए आज कालेज बंद रहेगा। लौटते समय सोचा कि डॉक्टर सक्सेना से दवा लेता चलूं। दवाखाने में घुसा तो कुर्सियां खाली थीं। डॉक्टर सक्सेना अंदर किसी मरीज से बातें कर रहे थे। अपेक्षाकृत तीखे शब्द सुनकर मैं ठिठका और जहां का तहां थम गया। अंदर से धीमी आवाज सुनाई दी, 'अभी कितने दिन और लगाओगे डॉक्साब !'

'दस-पांच दिन और देखो।'

'आपने पंद्रह दिन की बात कही थी और एक महीना हो चुका है।'

'तो मैं और क्या कर सकता हूं ?'

'तीन सौ रुपए लेने के बाद यह कहते हो ?'

'इट इज क्लीनिक मैडम !'

'आई नो।'

'देन यू गो।'

'बताऊंगी कभी।' कहते हुए एक खूबसूरत औरत ने खर्र से पर्दा सरकाया और तमतमाया चेहरा लिये तेजी से बाहर निकल गयी। पीछे से डॉक्टर सक्सेना निकले, कुछ खिसियाये हुए-से। मुझे देखकर उनका चेहरा और भी उतर गया, लेकिन अपने आप को संभालते हुए उन्होंने नम्र लहजे में कहा, 'आओ-आओ अरुण, तुम्हारा मर्ज अब कैसा है ?'

'वैसा ही है। मुझे तो कोई फायदा नहीं लगता। मवाद अब भी आता

है और पेशाब करते समय दर्द भी होता है।'

'यही तो फायदा है कि गुप्त मर्ज बढ़ा नही, कंट्रोल मे आ गया।' कहके वह अंदर चले गये तो मेरी नजरो में उस औरत की तस्वीर नाच उठी। डॉक्टर सक्सेना ने मुझको भी पंद्रह दिन मे ठीक कर देने का वादा किया था और आज बारहवें दिन भी मेरा मर्ज जहा का तहा है। कल को अगर डॉक्टर सक्सेना ने मुझसे भी यही कह दिया तो मेरे पास और रुपये कहा से आयेंगे ? किसी तरह मां का मनीआर्डर रोककर और इधर-उधर से जोड़-तोड़कर तो पंद्रह दिन की दवा के रुपयो का इतजाम कर पाया हू।

अचानक मुझे डॉक्टर रमेश का ध्यान आ गया। वह मरीज को देखकर दवा लिख देते है। मरीज बाहर से खरीदकर खाता रहता है और चगा हो जाता है। मेरे दिमाग मे आया कि क्यों न डॉक्टर सक्सेना से ही दवा लिखवाकर रोज-रोज की इस अदायगी से मुक्त हो लू। दवा लिखवाने के लिए मैंने बहाना बनाया, 'डॉक्साब, मैं कुछ दिन के लिए गाव जा रहा हू।'

'तो ?'

'जो दवा आप मुझे देते हैं, पर्चे पर लिख दीजिए।'

'क्यों ?'

'मैं वही पर खरीदकर खाता रहूगा।'

'तो आप उतने दिन की दवा लेते जाइए।'

'मेरे पास पैसे नही हैं। वही जाकर व्यवस्था करूगा।'

'यह दवा बाहर नही मिलती, मेरा निजी नुस्खा है।' कहकर उन्होंने दवा मेरी ओर सरका दी। दवा लेकर मैं उनके क्लीनिक से बाहर निकल आया। थोडी देर पहले उस औरत के साथ हुए डॉक्टर सक्सेना के सवाद मेरे मस्तिष्क में कुलबुला उठे। औरत के चेहरे पर उभरे आक्रोश और बेबसी के भाव मेरे चेहरे पर भी आ गये। डॉक्टर सक्सेना कोई मशहूर डॉक्टर नही हैं, लेकिन डॉक्टर सक्सेना ऐसे डॉक्टर है, मुझे नही मालूम था और अब जब मालूम हुआ है तो वे मेरी जेब खाली कर चुके हैं।

डॉक्टर रमेश। एक बार शर्मा के साथ पहले भी डॉक्टर रमेश के क्लीनिक जा चुका हू। वैसे डॉक्टर रमेश प्राइवेट डॉक्टर नही हैं। जहा वह मिलते हैं, सरकारी अस्पताल है, जिसके वह मेडिकल सुपरिटेंडेंट हैं, पर

शाम को प्राइवेट हो जाते हैं, सरकारी कुर्सी, अस्पताल और सामान में। कानपुर के दूसरे बड़े डॉक्टर जहां एक बार में ही बीस से तीस रुपये तक झटक लेते हैं, डॉक्टर रमेश सिर्फ आठ रुपये लेते हैं। इन रुपयों में वह मरीज को देखते है, स्क्रीनिंग करते हैं, और दवा भी लिख देते हैं। सरकारी अस्पताल में प्राइवेट मरीजों की इस तरह स्क्रीनिंग करने की इजाजत उन्हें कतई नहीं है, क्योंकि यह अस्पताल सिर्फ राज्य कर्मचारियों के लिए है, पर वह ऐसा करते हैं और इस काम में तीन चपरासी उनकी मदद करते हैं। बदले में उन्हें कुछ मिल जाता है, मरीज भी सस्ते में निपट जाते हैं।

स्क्रीनिंग डॉक्टर रमेश से इलाज करवानेवाले मरीजों के लिए प्रमुख आकर्षण है, क्योंकि छोटे-मोटे अस्पतालों में तो यह व्यवस्था होती नहीं। इसके अलावा डॉक्टर रमेश लंदन-रिटर्न डॉक्टर हैं। इन वजहों से उनके पास प्राइवेट मरीजों का तांता लगा रहता है। बीस मरीज भी आ गये तो डेढ़ सौ रुपये से ऊपर खरे हो जाते है। डेढ़ सौ रुपये प्रतिदिन तो तीन दिन में साढ़े चार हजार रुपये मानो कि साढ़े चार हजार रुपये मासिक ऊपरी इनकम, सोचता हुआ मैं डॉक्टर सक्सेना के क्लीनिक से निकलकर अपने कमरे में आ गया और जेब टटोली तो सिर्फ पंद्रह रुपये निकले। अब अगर आज शाम को डॉक्टर रमेश के पास जाऊं भी तो सिर्फ दवा लिखवा सकता हूं। दवा लिखवाने के बाद मेरे पास पांच-सात रुपये बचेंगे। पता नहीं, कितने रुपये की दवाएं खरीदनी पड़ें। एक-एक करके मैंने अपने सभी दोस्तों के नाम याद किये, पर ऐसा कोई नाम याद नहीं आया, जो सौ-पचास रुपये दे सकता। ले-देकर बिहारी ही ऐसा है, जो दे सकता है। पिछले हफ्ते वह तीस रुपये दे चुका है, अब और गुंजायश नहीं है। गांव से मां से मंगाने का सवाल ही नहीं उठता। पिछले महीने मनीआर्डर नहीं कर सका तो मां की दो चिट्ठियां आ चुकी हैं। इलाज की वजह से अगले महीने भी मनीआर्डर नहीं कर सकूंगा, लगभग निश्चित है।

वेतन के साठ रुपये मिलें तो दवा की बात सोचूं। वेतन और साठ रुपये! हां, मैं एक प्राइवेट स्कूल में साठ रुपये पर अध्यापक हूं। पढ़ाता हूं, इसलिए ट्यूशन हैं, नहीं तो वे भी छूट जायें। किसी तरह रुपयों की व्यवस्था हो तो डॉक्टर रमेश के पास जाऊं। पहले ऐसे मौकों पर जब पैसा नहीं

होता था तो बहुत गुस्सा आता था, पर अब कुछ नहीं होता। बेबसी मे जाने की आदत पड गयी है।

तीस तारीख को जब वेतन मिला तो सीधे डॉक्टर रमेश के क्लीनिक पहुंच गया। दवाएं लिखकर उन्होंने तीन दिन तक खाने का निर्देश दिया और फिर दुबारा चेक-अप के लिए आने को कहा। मैंने दवाएं खरीदी और तीन दिन बाद जब उनके यहा पहुंचा तो चेक-अप के बाद उन्होंने इंजेक्शन लिख दिये।

आठ इंजेक्शन खरीद लेने के बाद मेरे पास बहुत कम पैसे बचे। डॉक्टर रमेश स्वयं तो इंजेक्शन लगाते नहीं; फिर मेरा घर उनके अस्पताल से तीन किलोमीटर दूर है। ये इंजेक्शन मुझे बाहर ही कहीं लगवाने थे।

मेरे मुहल्ले में एक सरकारी अस्पताल है। वहां मैंने एक बोर्ड देखा था, जिस पर लिखा था—डॉक्टर के परामर्श पर बाजार से खरीदकर लाये गये इंजेक्शन यहा मुफ्त लगाये जाते हैं···

इंजेक्शन लेकर मैं वहा पहुचा। डॉक्टर गुप्ता से नमस्ते की और पडी हुई बेंच पर बैठ गया। मेरे हाथ मे इंजेक्शन देखते हुए भी उन्होंने पूछा, 'क्या है भई !'

'इंजेक्शन लगवाना है डॉक्साब !'

'तो जाकर कंपाउंडर से लगवा लो।'

उनका आदेश पाकर मैं कंपाउंडर के पास पहुंचा। कंपाउंडर ने मेरे हाथ से इंजेक्शन लेते हुए अठन्नी मांगी। मैं चौंका। इंजेक्शन लगवाने का यह मेरा पहला मौका था। मैंने उसकी ओर देखा और चुपचाप डॉक्टर गुप्ता के पास लौट आया, 'वह तो अठन्नी माग रहा है डाक्साब।'

'तो देते क्यों नहीं ?'

'यह तो सरकारी अस्पताल है।'

'है तो···'

'आपके बोर्ड पर लिखा है कि डॉक्टर के परामर्श पर बाजार से खरीदकर लाये गये इंजेक्शन यहा मुफ्त लगाये जाते हैं।'

'मेरा परामर्श लिया था ?'

'इसीलिए तो पहले आपके पास आया था।'

'भई, इंजेक्शन कंपाउंडर लगायेगा, उसी से जाकर निबटो।'

'तो फिर आप किस मर्ज की दवा हैं!'

'बिना मतलब की बात मत करो।'

'आप सरकारी डॉक्टर हैं।'

'हूं तो…?'

'इंजेक्शन लगवाना पड़ेगा।'

'इंजेक्शन नहीं लगेगा।'

'क्यों ?'

'क्योंकि मैंने प्रेस्क्राइब नहीं किया है।'

'अठन्नी दे देता तो प्रेस्क्राइब हो जाता ?'

'डोंट डिस्टर्ब द डिसपेंसरी एंड गेट आउट।' सुनकर मेरे अंदर कुछ उबला, लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर चुप रह गया। गुस्सा तो बहुत आया, पर कर भी क्या सकता था। डॉक्टर गुप्ता अच्छे नहीं हैं, यह बात मुझे पहले से ही मालूम थी। पहले ही तीन बार उनके पास आ चुका हूं, लेकिन तब मुझे इंजेक्शन नहीं लगवाने थे, मार्कशीट अटेस्ट करवानी थी। डॉक्टर गुप्ता ने कभी भी मार्कशीट अटेस्ट नहीं की। मैं जब भी गया, उन्होंने बहाना बना दिया, नपा-तुला बहाना—मोहर नहीं है, बनने गयी है। और तीन बरस में एक बार भी डॉक्टर गुप्ता की मोहर मेरे लिए बनकर नहीं आ सकी और आज डॉक्टर गुप्ता के इस रूप को देखकर तो मन किया कि उनका सिर ही तोड़ दूं।

मेरे मुहल्ले की बगल में एक मुहल्ला और है। वहां भी इसी तरह का एक अस्पताल है, नगर महापालिका का सरकारी अस्पताल।

वहां का डॉक्टर बिहारी को जानता है। उनके बारे में बिहारी ने बताया था कि उनकी ऊपरी इन्कम बहुत है। वह प्रायः प्राइवेट मरीजों के चक्कर में पड़े रहते हैं। पिछले दस बरस से यहां हैं और काफी नामी-गिरामी हैं, इसलिए कोई उन पर उंगली नहीं उठाता। यों वह इलाज बहुत अच्छा करते हैं, पर गरीबों का नहीं, अमीरों का, हालांकि सरकार ने उन्हें गरीबों के इलाज के लिए कानपुर की इस श्रमिक बस्ती में विशेष रूप से तैनात कर रखा है।

अमीरों के घर से पहले तो फोन आते हैं और फिर कोई वाहन। वह मरीज को देख आते हैं। वहां से लौटते समय उनकी जेब मे खरे-खरे नोट खोंस दिये जाते हैं। इसके बदले मे वह उनके घर अच्छी से अच्छी दवाएं भेज देते हैं। इतना ही नहीं, कुछ दवाएं और इंजेक्शन सीधे मेडिकल स्टोरों मे भी पहुच जाते हैं। रुपयों की इस तंगी मे मैंने बिहारी से कहा कि उनसे कहकर इजेक्शन लगवाने की व्यवस्था कर दो।

बिहारी मेरे साथ अस्पताल गया। डॉक्टर को नमस्ते की और उन्हें इजेक्शन दिखाते हुए मेरी ओर इशारा कर दिया। उन्होंने कंपाउडर के पास भेज दिया। उसे इंजेक्शन देते हुए बिहारी ने डॉक्टर का हवाला देकर टेस्टर डोज लगाने को कहा। कपाउडर ने इंजेक्शन बनाकर टेस्ट के लिए थोडा-सा पिचकारी मे भरकर एक जगह लगा दिया और पेन से घेरा खीचकर पद्रह-बीस मिनट तक बैठने को कहकर चला गया। लौटकर आया तो डॉक्साब को दिखा आने को कहा। मैं डॉक्साब के कमरे मे गया, पर वे वहा नही थे, कही चले गये थे। मैं कपाउडर के पास लौट आया। इजेक्शन लगाने को कहा तो उसने साफ मना कर दिया। बोला, 'डॉक्साब की इजाजत के बगैर मैं नही लगाता। वह आ जायें, हाथ को देख लें और कह दें तो मैं लगा दू।' बिहारी ने उसे समझाया, 'डॉक्साब ने कह दिया है। तुमने टेस्ट भी कर लिया। जब रिएक्शन नही हुआ तो अब लगा देने मे तुम्हें क्या परेशानी हो रही है।' लेकिन वह नही माना। तभी एक मोटा-सा आदमी आया। कपाउंडर को इजेक्शन दिया और दो मिनट मे लगवाकर चलता बना। जाते समय एक अठन्नी कपाउडर की हथेली पर रख दी। मेरी नजर उस बोर्ड पर फिर चली गयी, जिसमे लिखा था—यहा पर दवाएं मुफ्त मिलती है। डॉक्टर के परामर्श पर बाजार से खरीदकर लाये गये इजेक्शन यहा मुफ्त लगाये जाते है। इंजेक्शन लगाने के पैसे न दें…

तब इच्छा हुई कि कपाउडर की हथेली पर मैं भी एक अठन्नी रख दू और झटपट इजेक्शन लगवाकर चलता बनू। बाहर एक रुपया पडता है, यहा अठन्नी ही पडेगी। रोजाना अठन्नी की बचत तब भी होगी। पाच-छह दिन के पैसे हैं ही। तब तक कुछ न कुछ इतजाम हो ही जायेगा, सोचकर

अठन्नी निकालने को मेरा हाथ जेब मे चला गया। तभी डॉक्साब की आवाज सुनायी दी तो बिहारी के साथ मैं उनके पास गया। उन्होंने हाथ देखा और कपाउडर को बुलाकर कहा, 'भइये, ये अपने आदमी है। इतनी देर तक क्यो बिठाये रखा?' तब कंपाउडर ने इंजेक्शन भरकर झटपट मेरी बाह मे भोंक दिया।

अगले दिन अस्पताल की सीढियो पर कदम रखते हुए मैंने निश्चय कर लिया कि जाते ही कपाउडर को अठन्नी थमा दूगा, पर ज्यो ही कपाउडर ने मुझे देखा, अपना चेहरा घुमा लिया और कुछ देर बाद बोला, 'भाई साब, इजेक्शन नही लग पायेगा। सिरिंज खराब हो गयी है, आप कल आ जायें।'

जेब के भीतर अगुलियों मे फसी अठन्नी कसमसाकर रह गयी। मेरी इच्छा हुई कि अठन्नी निकालकर कपाउडर की हथेली पर रख दू और कहू, 'कपाउडर साब, आज मैं मुफ्त मे इजेक्शन नही लगवाऊगा। अब आपको रोज एक अठन्नी दिया करूगा।' लेकिन कहने की स्थिति शेष नहीं थी। मेरी नजर फिर उसी बोर्ड पर चली गयी—डॉक्टर के परामर्श पर बाजार से खरीदकर लाये गये इजेक्शन यहा मुफ्त लगाये जाते हैं...

अब वहा से लौटने के सिवा कोई चारा नही था। रास्ते मे घोष का दवाखाना खुला दिखा तो मैं उसी मे घुस गया। धोती-कुर्ता पहने एक वृद्ध सज्जन बैठे थे। पूछा तो पता चला कि वही डॉक्टर घोष है। इसके पहले कभी डॉक्टर घोष को मैंने गौर से नही देखा था। जरूरत ही नही पडी थी। मैंने उनके सामने इजेक्शन रख दिया। वह सुई ढूढने लगे तो मेरी नजर उनके दवाखाने का मुआयना करने लगी—इधर-उधर दीवारो पर गर्द जमा थी। अल्मारियां प्राय खाली थी। एक अल्मारी मे कुछ इजेक्शन, डिस्टिल्ड वाटर, टेबलेट और बोतले थी। लग रहा था कि दवाखाने की दसियो बरस से जैसे पुताई ही नहीं हुई है। सुई नही मिली तो डॉक्टर घोष ने याद करते हुए कहा, 'अरे, सुई तो घर मे ही रह गयी है। आप घर चलें तो मैं लगा दू।' मैंने देखा कि मेरी स्वीकृति का इतजार किये बगैर वह दवाखाना बद करने लगे। उसे बद करके छडी टेकते हुए धीरे-धीरे चल दिये। रास्ते मे उन्होंने बताया, 'दोनो लडके बेकार है। इस बुढ़ापे में भी उन्हे पालना पड़ रहा है। अनुभव और प्रशिक्षण के आधार पर उनका रजिस्ट्रेशन हो गया

था। पहले वह सरकारी अस्पताल में कंपाउंडर थे।' घर पहुंचकर उन्होंने मुझे कमरे में बिठाया और अपनी पत्नी से सुई मंगवायी। डिस्टिल्ड वाटर की शीशी तोड़ी और इंजेक्शन बनाने लगे। बिना स्पिरिट या गरम पानी के उन्हें ऐसा करते देखकर मैंने टोका, 'पिचकारी धो तो लेते डॉक्साब।'

'फिकर मत करो।'

'आप स्पिरिट नहीं रखते ?'

''घबराइए नहीं, यही सब करते हुए बूढ़ा हुआ हूं।' कहते हुए उन्होंने इंजेक्शन मेरी बांह में लगा दिया। उन्होंने जब सुई बांह से निकाली तो मुझे अपेक्षाकृत अधिक दबाव महसूस हुआ। सुई वाला स्थान फूलता-सा दिखा और छूने पर लगा कि वह पथरा रहा है। आशंकित होकर मैंने उनसे पूछा, 'यह क्या हुआ डॉक्साब !'

'आप चिंता न करें। मुझे चालीस साल का अनुभव है'।

'यह पथरपन कैसे ठीक होगा ?'

'बोरिक एसिड डालकर गर्म पानी से सेंक दीजिएगा।' कहकर डॉक्टर चोप इत्मीनान से बैठ गये, लेकिन अपनी बांह की इस स्थिति से मैं घबरा गया। फिर से उसे छुआ तो वह कुछ और पथरा गयी लगी और मुझे अपने गांव के राधे की याद आ गयी। भरा-पूरा जवान था राधे। हकीम ने गलत सुई से इंजेक्शन लगा दिया तो टिटनेस हो गयी और राधे मर गया। मौत की कल्पना करते ही मैं सिहर उठा, कदम तेजी से कमरे की ओर बढ़ चले।

घर पहुंचकर कमरे के किवाड़ खोले और धम्म से चारपाई पर गिर पड़ा। आंखें बंद कर लीं और सोचता रहा, न जाने क्या-क्या। टन्न टन्न ···टन्न। दस बजे तो ध्यान आया कि पढ़ाने स्कूल जाना है। बांह पर फिर अंगुलियां फेरी तो स्कूल जाने की इच्छा नहीं हुई। बांह को सेंकना जरूरी था, लेकिन स्कूल न जाने पर दो दिन का वेतन कट जायेगा। एक दिन की अनुपस्थिति पर दो दिन का वेतन हजम। दो दिन का वेतन यानी चार रुपये, चार रुपये की बात उठते ही मैं उठ खड़ा हुआ। भूल गया कि बांह सेंकनी है और समय से स्कूल पहुंच गया, भागता हुआ।

1977

शिक्षाकाल

घर से निकलकर रघुनाथ भाई ने चौपाल में सो रहे
आवाज दी और कान पर जनेऊ चढ़ाकर पिछवाड़े
चौपाल में आये और माचिस के लिए उस घुप्प अंधेरे
कि अचानक उनका हाथ माचिस में लगा। उन्होंने
लिया। फिर एक तीली निकालकर धम्म से घिस दी
तीली को बाती से छुआकर चिराग जला दिया। च
हो गया। उसमें ललछौंही उजास फैल गयी।

मदन और राजू रजाई में दुबके हुए थे।
की कमीज रखी थी और रस्सी पर पाजामा लटक
गड़ी दो खूंटियों पर एक तख्ती, तख्ती पर रखी हु
ज्यामेट्री बाक्स और दवात, नीले रंग का पेन,
छोटी-सी डिब्बी और दफ्ती का नीली अबरीवाला
पर रंग-बिरंगी तस्वीरें यानी मदन का चौपालनुमा
पहले कमरा नहीं था, चौपाल थी और कमरा तो
लेकिन मदन इसे कमरा ही कहता है। हां, रघुनाथ
भी चौपाल है। इस चौपाल में पहले बिना दरवाजे

को मदन ने कच्ची-पक्की ईंटों से बंद कर दिया है। शेष एक में दरवाजा लगवा देने की बात उसने रघुनाथ भाई से कई बार कही, लेकिन हर बार उन्होंने इसे फिजूलखर्ची कहकर टाल दिया।

दीवारों से झरता हुआ लोना और सबकी उपेक्षा ने चौपाल को लगभग खंडहर का रूप दे दिया था। चौपाल के दक्षिणी हिस्से में दीवार के किनारे छत में एक बड़ा-सा सूराख हो गया तो बरसात में छत का पानी झर-झरकर झरने की तरह झरने लगा। छत का यह पानी, छत को ही नहीं, धीरे-धीरे दीवार को भी काटता जा रहा था। उसमें जगह-जगह कटान के निशान उभर आये थे। घर के अंदर पढ़ने में मदन को दिक्कत होती थी। भाई-भाभी और बच्चों की किचपिच में उसका ध्यान बंट जाता। चौपाल को कमरा बनवाकर मदन ने अपनी इस समस्या का समाधान चाहा था, किंतु उसकी चाह पूरी न हो सकी और जिस तरह से उसने अपनी चाह को पूरा किया है, उसे पूरा होना नहीं कहा जा सकता। एकबारगी उसके दिमाग में यह बात भी आयी थी कि दरवाजों के लिए वह भाई से जिद कर दे; आखिर इस घर में आधे का हकदार वह है। रघुनाथ भाई बापू की पहली संतान थे और वह आखिरी, रघुनाथ भाई से अठारह बरस छोटा। बीच में आठ-नौ भाई-बहनों में रानी जीजी के सिवा कोई बचा नहीं। भाई से वह इतना छोटा है, इसका मतलब यह तो नहीं कि खुद सब कुछ करते रहें और उसकी छोटी से छोटी चाह भी पूरी न होने दें।

रघुनाथ भाई ने मुड़कर लैरुओं पर नजर डाली। सब के सब शांत बैठे थे। गोबर और पेशाब से गीले हुए कच्चे फर्श पर खुरों के दबाव से कीचड़ ही कीचड़ हो गया था। अच्छे-खासे लिपे-पुते फर्श की छीछालेदर हो गयी। यह कचोंधन मदन को कतई नापसंद है। दरवाजे लगने की अपनी चाह पूरी न होने के बावजूद मदन हारा नहीं, उसने सोचा था—कभी न कभी तो उसके पास पैसे आयेंगे ही, और तब वह सबसे पहले दरवाजे ही लगवायेगा। ऐसे तो उसकी कापी-किताबों और कपड़ों-लत्तों के चोरी चले जाने की आशंका बनी रहती है।

छत के छेद को उसने लकड़ी और सरसौंडी लगाकर मिट्टी से बंद कर

दिया था। कमरे की दीवारों को खुरपी से तराशा था, ताकि लोना लगी मिट्टी का झरना बंद हो जाये। उसके बाद तालाब की मिट्टी और गोबर का लेप बनाकर दीवारों पर चुपड़ा था, जिससे उनमें नयी जान आ गयी थी। तब उसने उसे कलई से पुतवाने के लिए रघुनाथ भाई से रुपये मांगे थे और उन्होंने उसे झिड़क दिया था। झिड़के जाने के बाद उसने उसे परोंठे से पोता था, फर्श को बराबर कर कूटा था और जब गोबर में गेरू मिलाकर उसे लीपा तो कमरा चमक उठा। हाट-बाजार या मेले से कभी-कभार खरीदी हुई कलेंडरी तस्वीरों से कमरे को सजा दिया है। बिना बेंट की खुरपी दीवार में गाड़कर मदन ने उसका चिरागदान बना लिया और अपनी चारपाई डाल ली। यही पढ़ने और सोने लगा। उसके साथ कर दिया गया तीन साल का राजू, उसके इन्कार के बावजूद। फिर भी, घर से बाहर उसे अच्छा लगता—एकांत वासा, झगड़ा न झासा। लैरुए हरदम तिदवारी में बधते थे। चौपाल को झाड़-पोंछकर जब मदन ने उठने-बैठने के काबिल बनाया तो भाभी ने एक नया फरमान जारी कर दिया कि लैरुए मदन के कमरे में बंधा करेंगे। एक तरफ मदन की चारपाई रहेगी, दूसरी तरफ लैरुए। भाभी के इस फरमान से मदन जल उठा। उसे लगा कि यह सरासर उसका अपमान है। उसे और पशुओं को एक ही खाते में रखा जा रहा है। वह मन ही मन भुनभुनाकर रह गया।

चिराग जलाकर रघुनाथ भाई दिसा-मैदान को चले गये थे। लौटकर आये तो कमरे में घुसने के साथ ही मदन को फिर से आवाज दी, 'मदनऊं!'

'आ ऽ '

'चलो, जल्दी उठो।' कहकर रघुनाथ भाई ने चिराग उठा लिया और बरोठे से जानवर निकालने लगे। सबसे पहले चारों भैंसे निकालकर नादों पर बांधीं और फिर तीनों गायें। बाद में बैल निकालकर लिढौरी पर बांध दिये और चारा मशीन पर चले गये। मदन भी उठकर बनियाइन पहनने लगा। रजाई से बाहर होने पर उसे सर्दी का एहसास हुआ। कंपकंपी छूट आयी। दांत किटकिटाने लगे। मन किया कि पाजामा-कमीज भी पहन ले,

किंतु अभी तो चारा मशीन में जुटना था। करबी में घुसे कीड़ों के खून से अगर खराब हो गये तो कॉलेज क्या पहनकर जायेगा। यही कमीज-पाजामा तो उसके पास है, कौन दो-चार जोड़ी रखे है, जो बदलकर पहन लेगा। चारा मशीन में जुटने के लिए तैयार होकर कमरे से बाहर निकलते समय उसे बदबू का एहसास हुआ। वह समझ गया कि राजू ने आज फिर टट्टी कर दी है। उसका मन घृणा से भर उठा। मन किया कि दो-चार चाटें जड़ दे और भाभी को कथरी साफ करने के लिए भी कह दे। तब तक रघुनाथ भाई ने फिर आवाज दे दी। राजू को वैसा ही छोड़कर वह चारा मशीन पर पहुंच गया। करबी का गठवा गिराया और छप्पर में खुंसे हंसिया से उसका बंध काट दिया। खूंटी पर टंगा चारावाला टटियाया कुर्ता उतारकर पहन लिया। मशीन के गडांसों पर रेती लगाकर भाई जब तैयार हो गये, तब उसने मोबिलआयल का डिब्बा उन्हें पकड़ा दिया। वे मशीन के छेदों, दरांतों और जोड़ों पर तेल डालते जाते और मदन खाली मशीन घुमाता जाता।

तेल पड़ जाने के बाद उसने मूठा लगाया और भाई के साथ मशीन खींचने लगा। बार-बार मूठा लगाने में यद्यपि उसे आराम मिल जाता है; फिर भी भाई के मुकाबले अभी वह कच्चा और कमजोर है, हांफ-हांफकर रह जाता है। दांत किटकिटा देनेवाली सर्दी में भी पसीने से तर-बतर होकर उसकी सांस फूलने लगती है। चारा कट जाने पर उसे लगता है कि जैसे किसी यातना से मुक्ति मिल गयी हो।

चारा कट गया तो कुर्ता उतारकर अंगोछे से बदन पोंछता हुआ मदन बाहर निकल आया। बनियाइन पहन रहा था कि भाभी दिख गयी। हाथ में लोटा लिये हुए वे दिसा-मैदान से लौट रही थीं। कमरे से पाजामा-कमीज लेकर वह बाहर निकल आया और वे राजू को उठाने लगीं।

मदन ने निश्चय कर लिया था कि आज वह कथरी नहीं धोयेगा। अभी तक इनके लड़कों-बच्चों का गू-मूत सब करता रहा है, लेकिन अब कुछ नहीं करेगा। बच्चों को देखो-भालो, रात-भर जानवरों की निगरानी रखो, ग्यारह-बारह बजे रात तक पढ़ो और चार बजे ही भाई काम में जुटा देते हैं। पांच घंटे भी आराम से सोने को नहीं मिलता। रात में कोई न कोई

जानवर खूटा-गिरवा जरूर तोड़ता है। उसने लाख बार कहा कि मजबूत पगहे और जजीरे ले आओ, लेकिन रघुनाथ भाई सुने तब ना। नींदभरी आखो से रात मे जागकर यह सब कौन उन्हे करना पड़ता है। एक दिन भी करना पडे तो पता चल जाये।

भाभी राजू को उठा ले गयी थी, परतु कथरी वैसी की वैसी पड़ी थी। यह देखकर उसके अदर जोर से कुछ भभका। तेजी से गुस्से मे वह घर के भीतर घुसा, पर अदर पहुचते-पहुचते शात हो गया। दूध दुहाने के लिए पिपिया तथा लीटर उठायी और घर से बाहर निकल आया।

गाव से निकलकर जैसे ही वह बबे की पटरी पर आया, हवा हाड़ तोड़ने लगी। ऐसी सर्द हवा का एहसास घरो के भीतर रजाइयो मे दुबके हुए लोगो को कभी नही होता। यह हाड़-तोड एहसास तो मदन जैसे काम-काजी लोगो को ही होता है। सर्द हवा के ये झोके नथुनों से अदर पहुचकर शरीर को भीतर ही भीतर काट-सा देते हैं। चाकू की धार की तरह तेज और नुकीले हवा के ये तीखे झोके हाथो तथा पैरो की खाल को छील-सा देते हैं। कान जब ठिठुरकर सुन्न पड़ने लगे, मदन ने उन्हे अगौछे से कसकर बाध लिया, लेकिन हाथ-पैर तो सुन्न होगे ही, रोज होते है। पैरो मे न ढग के जूते हैं, न मोजे और न ही हाथो मे दस्ताने, हालाकि जब भी कोई यह बात छेड़ता है तो मदन का नपा-तुला जवाब होता है, 'मोजे और दस्ताने बड़े लोगो के चोचले है। हमारे जैसे लोग मोजे और दस्ताने पहन लें तो सानी-चारा और गोबर-पानी कैसे हो।' ऐसा कहने के बावजूद वह इनकी जरूरत बड़ी शिद्दत से महसूस करता रहा है, पर जानता है कि ये आवश्यक जरूरतें भी पूरी नही हो पायेंगी, और जब पूरी नही हो पायेगी तो रघुनाथ भाई से कहना ही बेकार है।

बबे की पटरी पर चलते-चलते मदन शीशम के पेड़ो के झुरमुट के नीचे आ गया। शुरू-शुरू मे उसे यहा बहुत डर लगता था। अब तो खैर उतना डर नही लगता, फिर भी झुरमुट को पार वह जल्दी-जल्दी ही करता है।

तीन वर्ष पहले इसी झुरमुट मे चमा ठाकुर की बोटी-बोटी काट डाली

गयी थी। गाव के और लोगों के साथ उसने भी बग्गा ठाकुर की कटी हुई चोटियां और छितराया हुआ खून देखा था। बाद में लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि बग्गा ठाकुर भूत बनकर झुरमुट में रहने लगा है और कभी-कभार राह चलते लोगों को घेरकर तंग करता है।

पिछले वर्ष रघुनाथ भाई ने दूध का धंधा शुरू किया। कुछ दूध घर में होता, कुछ दूसरे गाव सबलपुर में रघुनाथ भाई ने बांध दिया, जहां से मदन को दुहाकर लाना पड़ता था। पहले दिन तो रघुनाथ भाई उसके साथ सबलपुर गये, पर दूसरे दिन से मदन को अकेले ही जाना पड़ा। झुरमुट में बग्गा के भूत से मदन को डर तो बहुत लगा, पर भाई का हुक्म किसी भी कीमत पर उसे बजाना ही था।

दूसरे दिन सूरज डूबने से काफी पहले वह सबलपुर पहुंच गया। सोच रहा था कि सूरज डूबते-डूबते उसे दूध मिल जाये और अंधेरा होने से पहले ही वह झुरमुट को पार करअपने गाव वापस पहुंच जाये, लेकिन दूध मिलते-मिलते सूरज डूब गया और धुंधलका बढ़ने लगा। जैसे-जैसे अंधेरा घना हो रहा था, वैसे-वैसे उसके हृदय की गति तेज हो रही थी। जो वह नहीं चाहता था, हो गया—अंधेरा, घुप्प अंधेरा। पूरा दूध मिलने के बाद सिर पर पिपिया रखकर वह सबलपुर से बाहर निकल आया। दूर से ही शीशम के पेड़ों का झुरमुट किसी दैत्य की तरह उसकी आंखों में खौफ पैदा करने लगा। उसे लगने लगा कि वह झुरमुट के नीचे से गुजरेगा तो भूत उसके ऊपर कूद पड़ेगा और···और···यह सोचकर ही मदन सिहर उठा।

अचानक उसे एक युक्ति सूझ गयी। उसने पिपिया से थोड़ा-सा दूध निकाला और बग्गा भूत के नाम जमीन में डालकर विनती की, 'हे भूत बाबा, मैं वैसे ही बिना मा-बाप का दीन-दुखी और सताया हुआ लड़का हू। तुम मेरे ऊपर दया रखना, मुझे सताना नहीं।' इस तरह की विनती करने के बाद उसे कुछ इत्मीनान हुआ। काफी हिम्मत जुटाकर वह आगे बढ़ा, लेकिन थोड़ी ही दूर चलने पर उसकी हिम्मत टूट गयी और कदम अपने आप रुक गये। उसका भय अभी भी खत्म नहीं हुआ था। सीऽ···चीऽ··· झींगुरों और कीट-पतंगों की आवाजें उस निर्जन माहौल को और भी खौफनाक बना रही थीं।

कुछ सोचकर वह बबे को पटरी से एक खेत की मेड पर उतर गया और घूमकर थोडे चक्कर से झुरमुट बचा जाने के लिए चाल तेज कर दी। कुछ ही दूर चला होगा कि मेड़ पर सामने से आता हुआ कोई बघर्रानुमा जनाउर दिखा। जनाउर देखकर उसके रोगटे खडे हो गये। जहा का तहा रुककर सोचने लगा वह—अगर यह बघर्रा है, तब तो खा ही जायेगा और अगर बघर्रा नही है तो भेष बदलकर बग्गा भूत उसे घेर रहा है और छोडेगा वह भी नही। उसके ठिठकने पर वह जनाउर भी रुक गया था—जरूर यह भूत है, तभी तो रास्ता रोककर खडा हो गया, मदन ने सोचा।

बुजुर्गों के मुह से उसने सुना था कि इस तरह जनाउर का भेष बनाकर भूत अगर घेर ले तो चुपचाप लौट पडो और मुडकर पीछे मत देखो। यह बात दिमाग मे आते ही वह सबलपुर की तरफ लौट पडा। उसे बजरंग बली की याद आ गयी और वह उनका सुमिरन करने लगा—'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर, जय कपीश तिहु लोक उजागर। भूत-पिशाच निकट नहिं आवै···' सास रोककर हनुमान चालीसा का पाठ करते हुए वह बडी तेजी से आगे बढ रहा था कि सर्र से एक कुत्ता बगल से निकलकर आगे बढ गया। वह कुत्ता ही था, बघर्रा या भूत नही, उसने उसे जाते हुए अच्छी तरह से देख लिया था।

वह अक्सर कहा करता था कि भूत नही होते, भय के भूत जरूर होते हैं। उसे अपनी बात पूरी तरह से सही लगी। वह कुत्ते को भूत समझकर डर गया था और तब उसने राहत की सास ली। तत्काल उसी जगह से फिर अपने गाव के लिए लौट पडा था। फिर भी, कुछ दिन इसी तरह मेड से निकलकर उसने झुरमुट को बचाया और फिर रोज-रोज आते-जाते उसकी हिम्मत पड गयी। एक दिन हिम्मत कर वह अधेरे मे ही उस झुरमुट के नीचे से होकर गुजरा था। उसने हिम्मत जरूर की थी, फिर भी जिस जगह बग्गा ठाकुर की कटी हुई बोटिया और बिखरा खून उसने देखा था, उस घुप्प अधेरे में पहली बार वहा से गुजरते हुए उसे एक खौफनाक एहसास हुआ था। इसके बाद फिर तो वह झुरमुट के नीचे से ही गुजरने लगा। अब तो खैर, यह उसका रुटीन हो गया है। फिर भी, न जाने क्यो, इस झुरमुट को पार वह जल्दी-जल्दी ही करता है।

सूरज के निकलने में कुछ देर बाकी थी। झुरमुट को पार कर मदन सबलपुर पहुंच गया। पूरा दूध दुहाया और सिर पर पिपिया रखकर अपने गाव लौट पड़ा। सूरज का लाल गोला ऊपर उठ रहा था। चारों तरफ चिड़िया चहचहा रही थी और घास पर मोतियों की मानिंद चमक रही थी ओस की नन्ही-नन्ही बूंदें। बंबे पर आकर उसे रामभरोसे मिला, जो दूसरे गांव से दूध दुहाकर अपनी साइकिल पर लौट रहा था। उसे देखकर मदन का मन किया कि वह भी साइकिल पर दुहाने आया करे, लेकिन वह तो अभी साइकिल चला ही नही पाता। दिनभर काम रहता है और उसे साइ-किल सीखने का कभी मौका ही नही मिलता। एक बार वह सीख रहा था तो रघुनाथ भाई ने डाट दिया। तब से उसने कभी सीखने की कोशिश ही नही की। रामभरोसे तेजी से पैडल मारता हुआ आगे निकल गया।

बंबे की ट्याक पर आकर उसने सिर से पिपिया उतारी। छर-छर करता पानी ट्याक से नीचे गिर रहा था। इधर-उधर घूमकर मदन ने चारों तरफ देखा। दूर-दूर तक कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ा। उसने पिपिया से एक ढक्कन दूध निकाला और गटागट पी गया। मन अभी पूरी तरह भरा नहीं था। आधा ढक्कन दूध और निकालकर मदन ने गले के नीचे उतारा और बंबे से लेकर डेढ़ ढक्कन पानी पिपिया में डाल दिया। हिसाब-किताब बराबर हो गया।

पहले मदन चोरी से इस तरह दूध नही पीता था। जब उसने देखा कि घर में इतना दूध होता है और भाभी उसे कभी भी एक पाव से अधिक नहीं देती। काफी दिन वह इतने दूध पर ही खटता रहा। भाभी दूध से मलाई निकालती। भर-भर डिब्बे घी होता तो भाभी खाती, बच्चे खाते और भाई भी, पर मदन घी के स्वाद तक के लिए तरस-तरस जाता। घर के ढेर सारे काम, कॉलेज की पढ़ाई और खाने के नाम पर मक्के की रोटियां और पावभर दूध, कभी-कभार साग-सब्जी और दाल।

दूध लेकर वह घर पहुंचा तो रघुनाथ भाई खा-पीकर कानपुर जाने को तैयार हो चुके थे। उसने पिपिया का दूध ताजे दूधवाले पीपे में डाल दिया और बाहर निकालकर दोनों पीपे साइकिल के कैरियर में बांध दिये। भाई आये तो साइकिल का हैंडिल उनके हाथों में देते हुए उसने कहा, 'कुछ

सामान ले का है।'

'कइस सामान ?'

'प्रेटिक्ल इतिहान केरि तयारी करै का है।'

'कित्ते रुपया लगिहै ?'

'तेइस-चउबिस लागि जइहै।'

'सझा का नाइ वकुरत बनत है, सवेरे-सवेरे अठेनि करि देत हौ।' कहकर रघुनाथ भाई रुपये दिये बिना गुस्सा होकर चले गये। वह कुछ देर सिर झुकाये वही खडा पैर के अगूठे से मिट्टी खुरचता रहा और जब रघुनाथ भाई आगे की गली मे मुड गये तो अपने कमरे मे चला आया। उसकी आखे भर आयी थी।

कमरे मे पहुचकर बदबू का एहसास उसे फिर हुआ। भाभी ने कथरी साफ नही की थी। उसके अदर फिर कोई लावा-सा भभका और बड़े गुस्से मे वह अदर आया। भाभी खाना बना रही थी और बड़का छोटे को बहला रहा था। रानी बर्तन धो रही थी। उसने रानी से जरा तेज आवाज में कहा, 'रानी, बर्तन बादि मा साफ करि लेहेव। पहिले कथरी साफ करि देव चलै।'

'उवा ना साफ करी।'

'तब तुम साफ करि देतिव।'

'ई रोटी का तुम्हार बाप बनावत।'

'होत, तब इहव करि देत।'

'खाय भरे के पेंतुआ हौ, काम करै मा मरी आवति है।'

मदन ने अपना गुस्सा रानी पर जाहिर किया था और भाभी ने उसके बाप तक को नही छोडा। भाभी की ये बातें सुनकर उसके मन मे ऐसे-ऐसे जवाब आये कि भाभी की बोलती बंद हो जाती, लेकिन फिर न जाने क्या सोचकर वह चुप रह गया।

भाभी की बातों से आहत होकर मदन ने पानी से भरी हुई बाल्टी उठा ली और अपने कमरे मे आ गया। कथरी साफ कर सुखने के लिए बाहर धूप मे फैला दी। इसके बाद बाल्टिया उठायी और पानी भरने लगा। जब पानी भर गया तो पलवा उठाया और गोबर समेटकर घूरे पर पहुचाया,

बरहचा उठाकर पूरा दुआर साफ किया और फिर हसिया लेकर करबी काटने चला गया। एक गठवा करबी लाकर मशीन पर पटक दी।

पढ़नेवाले लड़के जा रहे थे, लेकिन उसे तो अभी नहाना था, खाना था। जल्दी-जल्दी बाल्टी लेकर कुएं पर पहुंचा और खड़े-खड़े दो बाल्टी पानी सिर पर डाल लिया। नहाकर पहुंचा तो भाभी बच्चे को दूध पिला रही थी। रानी रसोई में गयी और परोसी हुई थाली उसकी ओर सरका दी··· वही पावभर दूध और मक्के की चार रोटियां। दूध, जिसमें मीसकर सिर्फ दो रोटियां ही खायी जा सकती हैं या फिर बोर-बोरकर चबाये या दो दूध में मीसकर और दो नमक-मिर्च से खाये। भाभी न तो ज्यादा दूध दे सकती हैं और न ही घी या दही। उसने रोटियां पलटीं—दो ताजी, दो बासी। शाम की बची हुई बासी रोटियां देखकर फिर उसके अंदर कुछ खौल-सा उठा। उसका मन किया कि बासी रोटियां भाभी के मुंह पर दे मारे, पर उसने अपने को रोका और रानी से तेल मांगकर ताजी रोटियों में चुपड़ लिया, नमक उर्राया और काट-काटकर खा लिया, बासी रोटियां दूध में मीसकर खा ली। खाने के बाद किताबें संभालीं और कालेज को भागा। सब लड़के जा चुके थे और वह अकेला रह गया था। उसे देर हो गयी थी और ऐसा अक्सर होता है। यह तो गनीमत है कि पहला पीरियड सक्सेना साहब का है और वे उसकी स्थिति से अच्छी तरह वाकिफ हैं, अन्यथा निगम साहब तो लेट हो जाने पर बिना किसी मुरौवत के 'गेट आउट' कह देते हैं। गांव से निकलकर मदन बटहे में आया तो उसे एक मुर्दा दिख गया। मुर्दा देखकर उसे अपने बापू की याद आ गयी।

जब बापू मरे, वह केवल नौ साल का था। मां की उसे कोई याद नहीं। दो बरस का था, तभी वे गुजर गयीं। बापू के साथ वह नौ बरस तक रहा है। जब वह छोटा था, बापू उसे गोद में लिये घूमा करते। कभी कंधे पर बिठाते तो कभी पीठ पर। दूकान से कपट ले देते। पट्टी, चूरन या मुरमुरिया, कुछ-न-कुछ वह खाता ही रहता था। कभी बरफ बिकने आती, बेर या अमरूद, बापू उसे जरूर खरीद देते। बापू के साथ ही वह खाता-

पीता और सोता था। बापू ही उसके कपड़े-लत्ते साफ करते, नहलाते-धुलाते और रात में थपकी देकर अपनी छाती पर सुला लेते।

जब वह छह साल का हुआ, बापू उसे स्कूल ले गये। ऊंचे दर्जे के लड़कों को मार पड़ती तो मदन के होश उड़ जाते। वह चुपचाप स्कूल से खिसक आता, अपनी पाटी और बस्ता वहीं छोड़कर। तब बापू भी उसके साथ स्कूल जाकर बैठने लगे और फिर धीरे-धीरे उसमें हिम्मत आ गयी।

जब वह तीसरे दर्जे में था, उसके सुख-सपने बिखर गये। आलू से भरी गाड़ी लेकर बापू कानपुर जा रहे थे कि उनकी गाड़ी से एक ट्रक टकरा गया और वे मर गये। उसे छोड़कर जब लोग लाश उठाने चले गये तो वह चौपाल में जाकर सिसक-सिसककर रोने लगा।

'चोप्प, बिना मतलबै भ्याभा पसारि रहो है।'

'............'

'जा, याक बाल्टी पानी भल्ला।'

बगैर कुछ बोले उसने मुड़कर विस्मय से देखा—भाभी थी और था उनके स्वर का बदला हुआ टोन। पहले तो भाभी इस तरह नहीं बोलती थी, सोचते हुए मदन पानी तो भर लाया, पर भाभी के इस बदले हुए टोन से उसे तकलीफ हुई और आश्चर्य भी। बापू के मरते ही भाभी को ये क्या हो गया, बहुत सोचने पर भी उसकी समझ में कुछ नहीं आया। कुछ दिन बाद भाई का टोन भी उसी तरह बदल गया और तब उसे मालूम हो गया कि अब सब कुछ बदल चुका है। रूठने पर अब उसे कोई मनाता नहीं, मनाकर खिलाता नहीं, वह भूखा ही सो जाता है। जिद करने का कोई अर्थ नहीं रह गया और तब उसने अपने आपको बदल लिया—जो कुछ मिल जाता, चुपचाप खा लेता और चौपाल में बाबा के पास सो रहता।

मदन की पहलेवाली बेधड़क आवाज दब गयी। बदली हुई नयी परिस्थितियों में उसे नयी आवाज का सहारा लेना पड़ा। नयी आवाज, जो दबी-दबी, घुटी-घुटी, बेजान और बेअसर थी, जिसे शायद किसी आवाज की संज्ञा नहीं दी जा सकती। दरअसल बापू के मरने के साथ उसकी अपनी आवाज भी मर गयी थी। भाई-भाभी की आवाज की प्रति-आवाज बनकर जी रही थी उसकी आवाज।

भाई और भाभी की आवाजों को मदन सुनता था, सुनकर उन पर अमल करता था। आवाजें, जो आवाजें कम, हुक्म अधिक हुआ करती थी। हुक्म चाहे आसान हो, चाहे कठिन, इच्छा हो, चाहे न हो, मदन को भाई-भाभी का मिला हर हुक्म बजाना ही होता था। शुरू-शुरू में उसने रघुनाथ भाई के कुछ कठिन हुक्म बजाने से इन्कार किया तो उन्होंने तमाचों से उसके गाल लाल कर दिये। तब मदन को लगा था कि बड़े भाई और किसी हुक्मरान में कोई खास फर्क नही होता और अगर होता है तो बाप के जिंदा रहने तक, और उसके बापू मर चुके थे। तभी से रघुनाथ भाई को उसने बड़े भाई से अधिक अपना हुक्मरान मान लिया था। शुरू में भाभी के भी कुछ हुक्म उसने नही माने थे। भाभी ने तमाचे तो खैर नही जड़े, लेकिन जो जड़ा, वह उन तमाचों से भी अधिक पीड़ादायक था—उसकी दाल में अलग से तमाम नमक भर दिया, सब्जी में अलग से पिसे हुए मिर्चे डाल दिये और दूध दिया तो आधा पानी मिलाकर।

मदन इन बातों की शिकायत करना, लेकिन किससे, रघुनाथ भाई से? उसकी हिम्मत नही हुई। बाबा का भी कोई वश नही था। वह चुपचाप चौपाल में बैठा आसू बहाया करता। कभी-कभी बाबा उसे इस तरह रोते हुए देख लेते तो उसके पास आते और आंसू पोंछकर सिर पर हाथ फेरते। तब उसे और भी रुलाई आती, वह फफक पड़ता और बाबा के सीने से लग जाता। तब बाबा के आंसू भी नही रुकते। उनकी बूढ़ी लाचार आंखो से झरना-सा फूट पड़ता।

बापू के मरने के बाद धीरे-धीरे घर के सारे काम मदन को सौंप दिये गये। सबसे पहले कुएं से पानी भरने का काम दिया गया। बाल्टियों से पानी भरकर लाने में उसके हाथ लाल हो जाते। फिर चारा मशीन में जुटाया गया। भैंसें दुहना, सानी-चारा करना, हल जोतना और फिर घर का हर काम उसे सभाल लेना पड़ा। बाबा जब कमजोर हो गये तो उनका गोबर डालने का काम भी मदन के ही मत्थे मढ़ा गया। चौदह-पंद्रह बरस की नन्ही-सी जान पर एक पूरे आदमी के काम डाल दिये गये। रघुनाथ भाई

सवाल किसी को भी नहीं आया था। मदन की तरफ मुखातिब होते हुए सक्सेना साहब ने पूछा, 'क्यों मदन, तुम्हें भी नहीं आया यह सवाल ?'

'आ गया है सर !'

'तो फिर बोर्ड पर हल कर दो, बाकी गधे भी नकल कर लें।'

'यस सर !' कहते हुए मदन अपनी कुर्सी से उठा, मेज से चाक उठायी और बोर्ड पर सवाल लगाने लगा। सवाल लगाते हुए उसने एक नजर क्लास पर डाली। कुछ लड़के बोर्ड की तरफ देख रहे थे और कुछ की नजरें उसके पुट्ठे पर टिकी थी। सिर को मोड़कर उसने पुट्ठे को देखा—कमीज फटी हुई थी। और तब लड़कों की वे नजरें उसे चुभने लगी। सवाल से उसका मन उचट गया। अनमने भाव से किसी तरह सवाल को पूरा कर अपनी कुर्सी पर लौट आया। आगे फिर किसी भी घंटे में उसका मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लग सका।

इंटरवल में क्लासटीचर ने बताया कि मदन और सलीम का वजीफा आया है, बड़े बाबू से जाकर ले ले। वजीफे की सूचना मिलते ही मदन की आंखों में एक अजीब तरह की चमक पैदा हो गयी। इस चमक में दुनिया उसे किसी और ही रंग की दिखने लगी। आंखों के सामने उसकी चौपाल बाकायदा कमरे में तब्दील हो उठी—कलई से पुता हुआ साफ-सुथरा कमरा, रंगे हुए दरवाजे, लकड़ी की खूबसूरत अलमारी में उसकी किताबें। चिराग की जगह लालटेन, माचिस की जगह लाइटर। एक मेज, दो कुर्सियां, बढ़िया मेजपोश। रंगीन रजाई, गद्दा और चादर। चाय बनाने के लिए स्टोव। एक टीन मिट्टी का तेल। पैंट-बुशर्ट, बाटा के जूते और मोजे, हाथों में दस्ताने और हीरो साइकिल—कल्पनाओं की इस उड़ान में मदन यह भूल गया कि जितने रुपये मिलेंगे, उनसे इतनी सारी चीजें कैसे आ पायेंगी, पर कल्पनाएं तो कल्पनाएं हैं, उन पर भी किसी का वश चला है कभी !

मदन के हाथ में इतने रुपये पहली बार आये थे। महत्व पहली बार का नहीं था, बल्कि इस बात का था कि ये रुपये उसके अपने रुपये थे, सिर्फ उसके, उसकी मेहनत का पुरस्कार, जो उसे सरकार से मिला था। इन

रुपयों पर उसका, केवल उसका अधिकार था। इन्हें वह मनचाहे ढंग में खर्च करेगा, अपनी तमाम आवश्यकताएं और इच्छाएं पूरी कर लेगा। बड़े बाबू से रुपये लेने के बाद घर जाते हुए ऐसा सोचते मदन की चाल में आज अनोखी अदा थी। बहुत दिन बाद उसकी जिंदगी में यह खुशी आयी थी।

रात में काफी देर तक उसे नींद नहीं आयी। रुपयों को उसने अपने पास ही रखा, अपनी जेब में। कल शनिवार है, परसों शिवपुर की बाजार है, तब वह सब कुछ खरीदेगा। दूसरे दिन जब वह कालेज गया तो भी रुपये अपनी जेब में ही रखे—कहीं कोई चुरा न ले या भाई-भाभी को पता न चल जाये, इस डर से। और फिर रखता भी कहां! कौन उसके पास ताले-चाभी वाला बक्सा है, जो उसमें रख देता।

शाम को पांच बजे जब वह कालेज से लौटा तो दरवाजे पर खड़ी भाभी उसे देखकर मुस्करायीं। वह चौके में आया तो भाभी की मुस्कराहट से उसके शरीर में सुरसुरी-सी दौड़ गयी—पहले तो कभी भाभी इस तरह नहीं मुस्करायी। वह चौके में बैठा तो वे उसे खाना परोसने बैठ गयीं। खाने की थाली उसके सामने आयी तो वह देखता ही रह गया—अचार, राब, गेहूं की रोटियां और सब्जी। एक कटोरे में दूध और चावल। खाते समय मदन को लगा कि उसकी किस्मत ने पलटा खाया है। उधर वजीफा मिला और इधर भाभी बदलकर उसके अनुकूल हो गयीं, सोचता हुआ मदन खाता रहा, भाभी मुस्कराती रहीं और उसके मन में फूल ही फूल खिलते रहे। इसी मुस्कराहट के लिए वह तरसता रहा है। भाई-भाभी का यह रूप देखने के लिए उसने क्या नहीं किया—उनके बच्चों के कपड़े-लत्ते फींचने से लेकर गू-मूत धोने तक। खाना खाकर वह करबी काटने चला तो भाभी ने एक और हंसिया देकर बड़का से कहा, 'जाव, बच्चा के संघै करबी कटवा लाव जाय।'

'हओ।'

कहकर हंसिया लेकर बड़का उसके साथ चल दिया। खेत पर पहुंचकर दोनों ने करबी काटी। बड़का के साथ उसका काम जल्दी निपट गया।

उसे खुशी हुई कि चलो अब बड़का भी काम में हाथ बटाने लगा, उसके काम जल्दी निबट जाया करेंगे और थोड़ा आराम भी हो जायेगा।

जब से भाई ने दूध का काम किया, पाच बजे से पहले कभी घर नहीं आये, लेकिन आज शायद जल्दी आ गये थे। जब कालेज से लौटा, भाई करबी का गठवा काटकर ले आये थे। रघुनाथ भाई भी उसके सुख-दुख का खयाल रखने लगे है! उसके बदले एक गठवा करबी काट लाये। रोज शाम को उसे दो गठवा करबी लानी पड़ती थी। आज एक गठवा भाई काट लाये और बड़का के साथ एक गठवा वह।

दूध दुहाकर लौटा तो रघुनाथ भाई मशीन के गड़ासे रेत रहे थे। दूध रखकर वह भी मशीन पर आ गया। चारा कटवाकर जब वह सानी करने चला तो रघुनाथ भाई ने उसे रोक दिया, 'सानी-चारा हम करि देवे। खा-पी के तुम पढ़ो जाय। तुम्हार इतिहान आ रहे है।'

'अऽ···' वह कुछ कहे, इसके पहले ही रघुनाथ भाई ने खली-चूनी की बाल्टी उसके हाथ से ले ली और सानी करने चले गये।

मदन ने हाथ-पैर धोये और खाना खाने बैठ गया। भाभी ने खीर बनायी थी। ढेर सारी उसकी थाली में परोसकर गेहू के दो फुलके रख दिये। खीर की मीठी-मीठी खुशबू से उसका मन और भी खुश हो उठा। भाभी के व्यवहार में यह परिवर्तन उसे बेहद-बेहद रुचा—यही तो वह चाहता था। काम जितना भी पड़े, कोई बात नहीं। खाना कैसा भी मिले, कोई परवाह नहीं। कठिनाइयां कोई भी हो, वह झेल जायेगा, बशर्ते भाई-भाभी का यह प्यार और मुस्कराहट उसे आतरिक शक्ति देते रहें। यही तो नहीं था उसकी जिंदगी में—वह सोच रहा था कि भाभी ने बड़े प्यार से दो चमचे खीर उसकी थाली में और परोस दी। वह गद्गद हो उठा। तब तक सानी-चारा से निबटकर भाई भी आ गये। रानी से पानी मागकर उन्होंने हाथ-पैर धोये और अगोछे से पोछकर चौके में आ गये। मदन चुपचाप खाता रहा, लेकिन उसे लगा कि भाई कुछ कहना चाह रहे है और एकाएक वे बोल पड़े।

'चलत बिरिया रुपया मांगत हव, तब हमें गुस्सा आ जात है। सबेरे-सबेरे अठेनि होइ जाति है तो दिनभर पइसा केरि छीछालेदर हो करति है।

तुम रुपया-पइसा संझा का मागो करो।'

'जब दुयाखव तव तुम बिचारे का डाटोय करत हौ। अब रुपया-पइसा वोहका हम देव करिवे, तुमसे कउनो मतलब ना राखी।' भाभी ने अपने पति पर रुआब झाड़ते हुए कहा। भाई-भाभी का अपने प्रति यह प्रतिस्पर्द्धी प्यार देखकर मदन के मन-प्राण में नयी-नयी उमगें जनम लेने लगी। तभी वे बोल पड़े, 'तुमका वजीफा मिलो हय ?'

मदन के शरीर में मानो किसी ने घप्प से चाकू घोंप दी हो। नहीं सोच पाया कि हां कहे या ना। असमजस में पड़ा वह कुछ बोल ही नहीं सका।

'कुछु जवाब नाइ दीन्हिव।'

'अऽ···'

'तुम्हार कलासटीचर मिले रहें···'

'अऽ···'

चाकू ने मानो आंतों को बाहर निकाल दिया। उसका दिल धक्-धक् करने लगा। अपनी कमीज का फटा पुट्ठा उसने देखा—कमरे से चौपाल में और चौपाल से कमरे में तब्दील होता उसका चौपालनुमा कमरा उसकी आंखों में दप-दप करने लगा। उसकी कल्पनाएं और वे अंतहीन भास, सारे के सारे मदन के दिमाग में बड़ी तेजी से आने-जाने लगे।

'रुपया हमैं उधार दइ देव।'

पहले दो-तीन बार एक-एक रुपया भाई ले चुके हैं। जब वे वापस नहीं किये तो इतने रुपये कैसे वापस करें देंगे, मदन सोचने लगा।

'कुछ बताएव नाइ मदन।'

'अऽ···'

'खाद लावै का है, खेत पियरा रहे हैं, कुछ रुपया कम पड़त हैं, दइ देव, रुपया तुमका जरूर-जरूर वापस करि देवे।'

'उवो कमरा मा दरवाजा, इया फाटि कमीच, इतिहास···'

'आलू खुदन देव, दरवाजा लाग जई। कमीचौ बनि जई। इतिहास खातिर रुपया अबहिनै लइ लेव।' रघुनाथ भाई ने जबरन अपनी बात घोंप दी तो भाई का वह प्यार, भाभी की मुस्कराहट और खीर की मीठी-मीठी महक एकदम से कसैली हो उठी। सिर उठाकर उसने देखा—भाभी

एकटक निहार रही थी और उनके चेहरे की मुस्कराहट गायब थी। भाई के चेहरे पर भी उन मुस्कान नहीं दिखायी दी, उनके चेहरे पर विद्रूपता झलकने लगी थी। चिराग की उजास पीली से लाल और फिर लाल से लाल होती चली गयी। वातावरण खूनी उजास में डूब गया।

'रुपया द्याहय कि···'

'अऽ···'

रघुनाथ भाई के अपेक्षाकृत कठोर स्वर ने मदन का हाथ उसकी जेब में पहुंचा दिया। नोटों की गड्डी उसकी अंगुलियों में कसमसायी और फिर रघुनाथ भाई के हाथों में चली गयी। खाली हाथ तेजी के साथ उठकर वह अपने कमरे में चला आया और बिना बिछी चारपाई पर धम्म से गिर पड़ा। उसकी धुकधुकी तेज हो गयी थी। पढ़ने-लिखने की इच्छा कतई नहीं हुई। उसने चिराग तक नहीं जलाया, जलाने की जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि आज तो वह खुद जल रहा था।

रात में कब नींद आयी, मदन को कुछ पता नहीं चला, लेकिन सवेरे चार बजे ही रघुनाथ भाई ने उसे फिर पुकारा, "मदन !"

'······'

'मदनऽ !'

'······'

'अरे ओ मदनवांऽऽ !'

'अऽ···'

रघुनाथ भाई की तीसरी आवाज पर मदन हड़बड़ाकर उठ बैठा और बनियाइन पहनता हुआ चारा मशीन पर पहुंच गया। गठवा गिराया, हंसिया से उसका बंध काटा। मूठा लगाया और चारा मशीन चालू हो गयी, रोज की तरह—खच् खच् खाच, खच् खच् खाच, खच् खच् खाच···

1976

क़लम हुए हाथ

माधो बापू ने शंकर को आवाज दी तो अम्मा उठ गयी। दरअसल आवाज अम्मा को ही दी गयी थी। रात के चार-साढ़े चार बजे मुर्गा बोलने पर शंकर का नाम लेकर दी गयी माधो बापू की हल्की-सी आवाज अम्मा के लिए ही होती है, इस बात को अम्मा अच्छी तरह से जानती हैं और शंकर भी। कभी-कभी माधो बापू की इस आवाज से शंकर की भी आंख खुल जाती है, लेकिन वह न तो उठता है और न ही बोलता है, चुपचाप पड़ा रहता है। आज भी माधो बापू की आवाज पर शंकर की आंख खुल गयी।

आवाज का जवाब देते हुए अपनी रजाई से निकलकर अम्मा ने सलूका पहन लिया और बखारी से थोड़ा-सा भूसा लेकर बरामदे में आ गयी। बिरोसिया को खखोरकर राख में दबी हुई आग निकाली, अंगूठे से उसे छूआ और भूसा रख दिया। लौटकर कोठरी में आयी और आले में रखे चिराग को उठा लिया। चिराग लेकर बिरोसिया के पास पहुंची तो भूसा धुधुवा रहा था। बैठकर उसे फूंकने लगीं, लेकिन उनका पोपला मुंह उसे जला नहीं पाया। सुलगते हुए भूसे का धुआं कोटरों में धंसी उनकी आंखों में घुस गया तो आंसू चुचुवा आये। भूसा शायद भीगा हुआ था, इसलिए नहीं जला। अम्मा की परेशानी समझकर तब तक माचिस लेकर शंकर

कोठरी से बाहर निकल आया। उसने माचिस घिसी और जलती हुई तीली को चिराग से छुआकर रोशनी कर दी।

अम्मा से उसने लाख बार कहा कि कम से कम रात में तो चिराग को माचिस से जला लिया करो, पर अम्मा न जाने किस माटी की बनी है कि *माचिस को छूती तक नहीं।* विरोसिया में गंडी कडे की आग और भूसे का ही इस्तेमाल करती हैं। उन्होंने शायद ही कभी माचिस छुई हो। दरअसल विरोसिया की आग और भूसे ने उन्हें कभी माचिस का मोहताज नहीं किया। माचिस रहने पर भी वे कभी उसका इस्तेमाल नहीं करतीं। यह अम्मा की कजूसी नहीं, आदत है। जिंदगी में कभी भी उन्होंने हाथ खोल-कर खर्च नहीं किया। उनका हाथ हरदम बंधा रहा। उन्होंने बहुत ऊंच-नीच देखे हैं और अपनी जिंदगी सादगी से गुजारी है। उन्हें वे दिन भी याद हैं, जब बडके पैदा हुए थे और घर में भूंजी भाग तक नहीं थी। *लगान न दे पाने* की वजह से जमीन बेदखल हो गयी थी। गरीबी और सखेती के उन दिनों से लेकर चार-चार हजार रुपये तक की आलू बिकने के खुशहाल दिनों में भी अम्मा की जिंदगी का ढर्रा एक-सा ही रहा है। थोड़ा-बहुत रफ-दफा कर दें तो उसमें कभी कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ।

अम्मा के पैरों में चांदी के खड़वे थे, जब वे शादी के बाद पहली बार यहां आयी थीं, उनके पैरों में वही खड़वे अब भी हैं। हाथों में कड़े भी वही हैं और कानों में हैं पचास साल पुराने कर्णफूल। फर्क सिर्फ इतना है कि अब सब कुछ घिसघिसाकर श्रीहीन हो गया है। मोटी किनारी की सादी धोती वे तब भी पहनती थीं और अब भी। पहले हरे या लाल रंग से रंग लेती थीं, लेकिन पिछले कई सालों से सफेद ही पहनती हैं। माधो बापू के पास तमाम-तमाम रुपये आने की बात वे सुनती भर रही हैं, लेन-देन से उन्हें कभी कोई मतलब नहीं रहा। अम्मा ने कभी कुछ खरीदा नहीं, कभी कुछ बेचा नहीं। सारी की सारी खरीद-फरोख्त माधो बापू ही करते रहे हैं। खाने-पहनने के लिए उन्होंने जो कुछ ला दिया, अम्मा ने बनाकर खिला दिया, खा लिया, पहना दिया, पहन लिया। कभी कोई शिकवा नहीं, शिकायत नहीं। माधो बापू ने ही जरूर, जब कभी बडके या मझले से झाय-झाय हुई तो अम्मा को ताना-सा दिया है कि तुम्हीं जिंदगी भर रोती रही कि

खेत चले गये, खेत चले गये। जब खेत वापस मिल गये तो रेढ़ना शुरू किया कि घर अच्छा नहीं है, घर बनवाओ। खेतों और घर के चक्कर में जिंदगी भर न ढंग से खा सके, न पहन सके। सोचा था कि बुढ़ापे में लड़के-बच्चे रोटी तो ढंग से देंगे ही, पर रोटी तो दूर, यहां जूतों तक का ठिकाना नहीं। कोई खाना पानी-पत्ता तक को तो पूछता नहीं है। यह सब तुम्हारे ही कारण हुआ। मेरी चलती तो कुछ न करता। रुपये बैंक में जमा कर देता तो आज सब साले आगे-पीछे घूमते। हाथ-पैर दबाते, चौबीसों घंटे ड्यूटी बजाते रहते।

'तौ फिर सबका काहे बाटि-बाटि कै दई दीन्हिव, न देतेव। न बाटि-बाटि कै देतेव, न इया हालति होति।' हालात की सारी वजह बंटवारे को करार देती हुई अम्मा छोटा-सा जवाब देकर चुप हो जाती हैं तो फिर माधो बापू भी कुछ नहीं कहते। लगता है कि अम्मा की दलील से वे असहमत नहीं हैं, लेकिन तब वे उसके सिवा कर भी क्या सकते थे, सोचते-सोचते उनकी आंखें सामनेवाली अधूरी दीवाल पर टिक जाती हैं और वे आगेवाले कमरों-बरामदों के बारे में सोचने लगते हैं। सामने के कमरे-बरामदे ही तो घर की छवि होते हैं और उनकी आंखें उसी छवि की तलाश में भटक जाती हैं।

जलता हुआ चिराग लेकर अम्मा कोठरी में आयी और माधो बापू के पास बैठ गयी। उन्हें सहारा देकर उठाया। खूंटे पर टंगे कुर्ते को उतारा और उनका हाथ उठाकर पहना दिया। माधो बापू का बायां हाथ बेकार हो गया है, सुन्न पड़ गया है। वे उससे कुछ कर नहीं पाते। कुछ करना तो दूर, उनका वह हाथ, अब उठता तक नहीं है। उसे दायें हाथ से उठाकर इधर-उधर करते हैं। कुर्ते के बाद अम्मा ने खूंटी से बंडी उतार ली। सफेद बंडी को मैल की काली-काली पर्तों ने चितकबरा-सा कर दिया है। वैसे तो शंकर ही कभी धो देता या अम्मा ही, पर बंडी रुइहा है, धुलने पर रुई भीगी तो बंडी की हालत खस्ता हो जायेगी और फिर सूखने में एक-दो दिन तो लगेंगे ही। बापू को यह सब खोखट लगती है। इसलिए जब से बंडी

चर्मी है, बेचारी को रेह या साबुन तो दूर, पानी तक नसीब नहीं हुआ। यों रखरखाव और उपयोग करते समय माधो बापू उसकी हिफाजत का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं। तभी तो अभी तक उसका एक भी तागा टस से मस नहीं हो पाया है। हाथ उठाकर अम्मा ने उन्हें बंडी पहनायी और सहारा देकर जमीन पर खड़ा कर दिया। कोने में रखी लाठी पकड़ा दी और बाहर ले चली।

माधो बापू नित्य-कर्म से निबटना चाह रहे थे। उनमें अब इतनी भी ताकत नहीं बची है कि आधा-एक किलोमीटर दूर गांव से बाहर दिसा-मैदान को जा सकें। इसलिए अब उन्होंने चार बजे उठने का नियम-सा बना लिया है। उधर इब्राहीम की नीम पर बैठा मुर्गा बांग देता है और इधर शंकर का नाम लेकर वे अम्मा को गुहारते हैं और शंकर नहीं उठता, अम्मा ही उठती हैं। टोले-पड़ोस के लोगों के उठने से पहले ही माधो बापू नित्य-कर्म से निबटकर फिर अपने बिस्तर में दुबक रहते हैं।

माधो बापू से निबटकर अम्मा ने कुठिला से एक डेलवा गेहूं निकाले और चकिया ओइर दी। चकिया चल पड़ी तो शंकर ने चिराग संभाला और पढ़ने बैठ गया।

चकिया का काम खत्म होते ही अम्मा घर से बाहर निकलकर छप्पर के नीचे आ गयी। बड़के और मंझले ने अपना-अपना बैल निकालकर लिहौरी पर बांध दिया था। शंकर की भैंस छप्पर के नीचे ही रह गयी थी। उसे निकालकर अम्मा ने नांद पर बांध दिया। बटवारे में एक बैल बड़के को मिला और एक मझले को। शंकर और बापू के हिस्से में भैंस आयी। घर का उत्तरी हिस्सा बड़के को और दक्षिणी मझले को मिला। पश्चिमी हिस्सा बापू और शंकर के पल्ले पड़ा। बड़के और मंझले अपने-अपने हिस्सों में चले गये। शंकर के साथ रह गये अम्मा और बापू। अपने लिए बापू ने कुछ नहीं रखा। सब कुछ बांट-चोंटकर दे दिया। अपनी रोटी के लिए तीन बीघेवाला चक अपने पास रख लिया, बस।

अम्मा की आवाज ने शंकर का ध्यान भंग किया तो उसने अपनी

किताबें समेटीं और बाहर निकल आया। खली-चूनी वाली बाल्टी देखी, अम्मा पानी से भर गयी थी और उसको आवाज देकर स्कूलवाले कुआं से पानी भरने चली गयी थी। शंकर ने एक नजर बखरी में लगे हैंडपंप पर डाली। पानी सब लोग भरते हैं, लेकिन जब बनता-बिगड़ता है तो फिर बापू ही ठीक करवाते हैं। इस बार बापू की हालत ऐसी है कि चाहकर भी ठीक नहीं करवा सके तो कई रोज से बिगड़ा पड़ा है। सब लोग स्कूलवाले कुएं से पानी भर लाते हैं, लेकिन बिगड़े हुए पंप को कोई ठीक नहीं करवाता, मानो हर बनी-बिगड़ी ठीक करवाने का ठेका बापू ने ही ले रखा है। बड़के सोचते हैं कि मझले ठीक करवायें और मझले सोचते हैं कि बड़के। ठीक होने में दो-चार रुपये लगेंगे और कोई भी अपनी टेंट खोलना नहीं चाहता। बस, पंप बिगड़ा पड़ा है तो पड़ा है।

शंकर बाहर निकला तो एक कांख में कलसिया दबाये और दूसरे हाथ में भरी बाल्टी लटकाये अम्मा अंदर आ गयी। वह सबई लेकर बखारी में चला गया। तब तक अम्मा कोठरी से पड़िया निकाल लायी। भूसा निकालकर उसने चबूतरे पर रख दिया। अम्मा ने भैंस तले पड़िया छोड़ दी तो वह बाल्टी ले आया। पड़िया हुथा मार-मारकर पी रही थी। भैंस के थनों में दूध अभी उतरा नहीं था। पड़िया की पीठ पर हाथ रखकर शंकर बैठ गया और दूसरे हाथ से भैंस के थन भिलगाने लगा। थोड़ी ही देर में भैंस ने दूध उतारना शुरू कर दिया तो मुलायम थन कड़े हो गये। भैंस पल्हा आयी तो शंकर ने पड़िया को खींचकर बांध दिया और थन धोकर दुहने लगा। दूध की पहली धार बाल्टी की पेंदी पर पड़ी तो वह टनकार उठी। थोड़ी देर बाद, जब पेंदी में कुछ दूध आ गया तो वह टनकार, घर-घराहट में बदल गयी, संगीत की सुर-लहरी के आरोह-अवरोह की मानिंद घर-घर-घर्र, घर-घर-घर्र। बाल्टी की पेंदी पर दूध की मोटी धारें पड़ीं तो ढेर सारा फेन उठने लगा और शंकर के दुहने की गति तेज हो गयी। भैंस दुहकर वह अंदर आया तो रजाई में दुबके बापू ने उसका नाम लेकर गुहार लगायी।

आवाज सुनकर वह उनके पास पहुंच गया। इस बार शंकर का नाम लेकर की गयी बापू की गुहार उसके लिए ही थी, अम्मा के लिए नहीं और

उनके पास पहुंचा भी वही। आले में रखी दवा की बोतल उठायी और चम्मच में दवा डालकर माधो बापू को दे दी। वे उसे गटाक से पी गये। होठों पर अंगुलियां फेरी और रजाई हटाने लगे। शंकर समझ गया कि अब वे बाहर धूप में जाना चाहते हैं। उसने उन्हें सहारा देकर खड़ा कर दिया और लाठी पकड़ा दी। लाठी और उसके कंधे के सहारे माधो बापू बाहर आ गये।

बड़के और मसले अपना-अपना बैल लेकर खेतों पर चले गये थे। बड़के की दोस्ती बिंदा से है और बिंदा के पास भी एक ही बैल है। वह भी अपने भाई पुत्तीलाल से अलग हो गया है। इस तरह एक बैल बड़के का और एक बैल बिंदा का मिलाकर जोड़ी बनती है और साझेदारी में बारी-बारी से वे अपने-अपने खेत जोत-बो रहे हैं। इसी तरह मसले और पुत्तीलाल ने भी जुट्टी बना ली है।

राजा ठाकुर गांव के प्रधान हैं। आजकल शंकर तथा माधो बापू का काफी ख्याल रखते हैं। शायद बापू की बीमारी और शंकर की असहाय स्थिति को देखकर या शायद इसकी वजह यह है कि राजा ठाकुर का लड़का शंकर के साथ ग्यारहवें में पढ़ता है और पढ़ने-लिखने में भोंदू है, जबकि शंकर हरदम अव्वल रहता है। राजा ठाकुर ने बीस रुपये महीने पर शंकर को इस बात के लिए राजी कर लिया कि वह उनके लड़के के साथ बैठकर दो घंटे पढ़ा करे और उसे भी अपने साथ पढ़ाया करे। बापू की बीमारी में इलाज के लिए सारा पैसा राजा ठाकुर ने दिया है। शंकर के हिस्से के खेत अपने ट्रैक्टर से जुतवाकर अपने ही नौकरों से बोआ दिये हैं। बापू के हिस्से का तीन बीघेवाला चक रह गया है। एक-दो बार बापू ने कहा, पर ठाकुर के बैल और ट्रैक्टर तब खाली नहीं थे।

नगद पैसे देकर अन्य किसी से जुतवाने और बोआने का माद्दा उनमें रह नहीं गया है। उधार-व्योहार जैसे भी, ठाकुर से ही काम चल रहा है। बड़के अपने खेत जोतने-बोने में पड़े हैं। मसले भी आपाधापी में हैं। फुर्सत में भी होते तो क्या बापू के हिस्से के खेत जुत जाते, क्या बापू उनसे कहते,

कह पाते, किस मुह और किन विश्वास के साथ कहते ? जो लड़के बटवारे के बाद बाप से बोलते तक नही, उसके मरने-जीने का हाल तक नहीं पूछते, बाप उनसे क्या उम्मीद कर सकता है, क्या कह सकता है ?

शकर ने बताया कि चक की ओइठि खरा रही है, एक-दो दिन में जुताई न हुई तो ओइठि चली जायेगी। ओइठि चली जाने की बात सुनकर माधो बापू की आखे भर आयी थी। उनको लगा कि उनका घर बिखर गया है। बिखरकर कई टुकड़ो मे बट गया है। एक मे होता तो सभाला भी जा सकता था, पर टुकड़ो-टुकड़ो मे बटे घर को सभाल पाना अब किसी एक के बूते की बात नही रह गयी है।

सूरज ऊपर चढ आया तो माधो बापू ने शकर से खेतो तक चलने की इच्छा जाहिर की। शकर ने मना किया कि आपकी तबीयत ठीक नही है, उतनी दूर चलोगे तो थक जाओगे, वैसे ही सास फूलती है। शकर ने मना जरूर किया, लेकिन माधो बापू माने नही। शकर के कधे और अपनी लाठी के सहारे डगरते हुए वे बड़े चक तक पहुच गये। इस चक को पाच-पाच बीघे के तीन टुकड़ो मे बाटा गया है—बड़के, मझले और शंकर के लिए। शकर के हिस्से के खेत तो खैर जुत-बो गये है, पर बड़के और मझले अभी तक हाथ-पाव मार रहे है। यह पहला मौका है, जब दीवाली आ जाने पर भी खेत बिना जुते-बोये पड़े है, नही तो जब तक बटवारा नही हुआ था, सारे के सारे खेत दीवाली तक जुत और बो जाते थे। बापू को मेड़ पर बिठाकर शकर अपना चक देखने चला गया। बापू मेड पर बैठे-बैठे बड़के और मझले के खेतो मे चलते बैलो को टुकुर-टुकुर देखते रहे। अपने खेतो मे घूम-फिरकर शकर लौट आया तो माधो बापू अपने हिस्से के तीन बीघेवाले चक की तरफ डगर चले।

बड़े चक और माधो बापू के हिस्से के छोटे चक के बीच राजा ठाकुर का चक पड़ता है। ठाकुर के चक के कुछ खेत पहले बापू के थे, लेकिन अच्छे और उपजाऊ होने के कारण चकबदी मे राजा ठाकुर ने उन्हे अपने चक मे करवा लिया और बापू का चक ऊसर की तरफ खिसक गया। ठाकुर के पास बहुत खेती है, उनका अपना ट्रेक्टर है, थ्रेसर है, ट्यूबवेल है, किसिम-किसिम के हल और औजार है, जिनसे राजा ठाकुर के सारे काम

पलक झपकते हो जाते हैं। माधौ बापू जब ठाकुर के ट्यूबवेल के पास पहुंचे तो उन्हें सुपारी कतरते देखा। बापू को देखते ही ठाकुर बोले, आव-आव माधौ भाई, बहुत दिनन मा दिखानेव ?'

'हां ठाकुर, अब चले नाइ चुकत है। हाथ-पाव जवाब दइगे हैं।'

'हां-हां, बुढापा मा तौ अइसै होत है।'

'अउर का हाल-चाल है ठाकुर ?'

'सब ठीक है। तुम आ गेव, नाही तौ अबहिन हम तुम्हरे घरै खुद अवइया रहन।' ठाकुर की बात सुनते हुए बापू चारपाई पर बैठ गये। ट्यूबवेल चल रहा था। दूर खेत से सतू ने फावड़े के लिए गुहार लगायी तो ठाकुर ने शंकर से फावड़ा दे आने को कहा।

शंकर लौटकर आया तो वे लोग विचारमग्न थे। शंकर के आते ही माधौ बापू उठ खड़े हुए और ठाकुर से बोले, सभा सब सोचि-समझि कै बतइबे।'

'ठीक है, हम सभा का अइबे।'

ठाकुर की बात सुनकर माधौ बापू अपने चक की तरफ चल दिये। उनके पांव तो जमीन पर थे, लेकिन दिमाग अतीत की अंधेरी गुफाओं में भटक रहा था।

तब राज था अंग्रेजों का और गांव के जमींदार थे ठाकुर के बाप शिवराज सिंह। माधौ बापू की शादी हुई ही थी। ओले बरस गये तो रबी की फसल चौपट हो गयी और फिर सूखे ने खरीफ की फसल को चपट लिया तो छोटे-मोटे किसानों की रही-सही कमर भी टूट गयी। बापू भी दाने-दाने को तबाह हो गये। लगान न दे पाने की वजह से उनको खेतों से बेदखल कर दिया गया। बापू ने शिवराज सिंह से लाख मिन्नतें कीं, पर उनके कानों में जू तक नहीं रेंगी। बापू किसान से मजदूर हो गये। तीन आने रोज की मजूरी पर शिवपुर के चपत ठाकुर की भदत में जाने लगे। तभी उन्हें चपत ठाकुर का खोया हुआ बैग मिला जिसमें चांदी के कुछ रुपये और जरूरी कागजात थे। उस बैग का बापू ने ज्यों का त्यों उन तक पहुंचा दिया। बापू की ईमानदारी से चपत ठाकुर इतने खुश हुए कि कुछ भी मांग लेने को कहा। वे बहुत बड़े जमींदार थे। माधौ बापू ने अपने

बेदखल खेत वापस दिलवा देने की विनती की तो चंपत ठाकुर ने शिवराज सिंह से कहकर उनके मन की मुराद पूरी करवा दी। माधो बापू फिर मजदूर से किसान हो गये।

बडके और मझले को पढाने की माधो बापू ने बहुत कोशिश की, पर वे पढ नही सके। हारकर बापू ने पहले तो बडके को खेती मे जुटाया और फिर मझले को भी। बापू के साथ दोनो बेटों का भी खून-पसीना पाकर खेती तो मानो सोना ही उगलने लगी। पहले से दुगुना-तिगुना पैदा होने लगा। और तेजी का जमाना आ गया तो सवा सेर से उतरकर गेहू तो छटाक तक के भाव बिक गया। बापू के पास नोटों की गड्डिया ही गड्डिया हो गयी। तब अम्मा ने बापू से घर की शिकायत की। बापू ने पुरवावाले खेत मे पचास हजार ईंटें पथवायी और कानपुर से कोयला मगवाकर पजेवा लगवा दिया। पजेवा खुला तो ईंटें अव्वल निकल आयी। बापू ने पीछे से घर की पक्की नीव डलवा दी और दीवालो पर दीवाले बनती गयी। तीन तरफ से पक्का घर बनकर तैयार हो गया। पूरब का हिस्सा और बाहर के कमरे बरामदे बनने को शेष रह गये थे।

अब तक बडके और मझले के दो-दो बच्चे पैदा हो चुके थे, लेकिन शकर की शादी नही हुई थी। बापू सब को समान रूप से कपडा-लत्ता करते, खर्चा-पानी देते। सब को खुश रखने की कोशिश करते। न लडाई, न झगडा। बापू अपने भरे-पूरे परिवार मे खुश थे। बच्चो को गोद मे लिये अम्मा घूमा करती। ऊपर के सारे काम-काज बहुए समालती।

तभी मझले की दोस्ती राजा ठाकुर से हो गयी। यद्यपि उसमे जमीन-आसमान का अन्तर था और राजा ठाकुर मंझले से चौदह-पन्द्रह साल बड़े थे, फिर भी दोस्ती हो गयी थी, क्योंकि दोस्ती, दोस्ती होती है, किसी से भी हो सकती है। यह दोस्ती जल्दी ही पान-बीडी से बढते-बढते जुआ और शराब तक पहुच गयी। मझले को शराब की लत लगी तो फिर लग ही गयी। तब मझले ने बापू से कुछ अधिक खर्च की माग की। और जब खर्चें की सीमा बहुत बढ़ गयी तो बडके ने माधो बापू को समझाया, 'शराब के

लिए मझले को इतने पैसे मत दीजिए। इसके पीने की सीमा इसी गति से बढ़ती रही तो एक दिन यह घर बरबाद हो जायेगा। शराब जिस घर में प्रवेश करती है, उस घर को तबाह किये बगैर नहीं छोड़ती।' और बड़के की बात मानकर अगली बार माधौ बापू ने मंझले को अधिक पैसे देने से मना कर दिया।

बापू के इस इन्कार से मंझले खौरिया गये। बापू की कोठरी में गये और उनका बक्सा उठाकर ताला तोड़ने लगे। शराब की तलब ने सीमा का अतिक्रमण कर दिया था। बड़के यह सब चुपचाप देखते रहे। माधौ बापू ने दौड़कर अपना बक्सा छीनना चाहा, पर मंझले ने धक्का दे दिया तो बापू उलटकर गिर पड़े। यह सब देखकर बड़के अपने आपको रोक नहीं सके। गुस्से में उबलकर खड़े हो गये और आव देखा न ताव, तड़ातड़ एक साथ कई झापड़ मझले की कनपटी में जड़ दिये और बक्सा छीनकर माधौ बापू को दे दिया। डबडबाई आंखों से मंझले ने बड़के को देखा और अपने को उन्नीस पाकर तेजी के साथ घर से बाहर निकल गये।

उस दिन शाम को ही मंझले का चूल्हा अलग जल गया। बाद में बापू ने जी-जान से कोशिश की कि बिगड़ी बात किसी भी तरह से बन जाये। ठाकुर दयालदासजी न करते तो संभव था कि बापू की कोशिश सफल भी हो जाती, पर ठाकुर बीच में आ गये और बटवारे की जमीन तैयार कर दी। बड़के बटवारे के पक्ष में कतई नहीं थे, इसके लिए वे राजा ठाकुर तक से भिड़ने को तैयार थे। उन्होंने बापू को समझाया कि आप बटवारा मत कीजिए, मंझले को घर से निकाल दीजिए। घर से निकलते ही उसका नशा हिरन हो जायेगा, लेकिन बापू तो बापू थे, मझले को घर से कैसे निकालते! एकबारगी बापू ऐसा सोचते भी, पर मंझले के दोस्त थे राजा ठाकुर। कहने को तो ठाकुर की जमींदारी चली गयी है, पर उनका रुतबा और दब-दबा तो पहले जैसा ही है। गांव के गरीब संतू से लेकर शिवपुर के थानेदार तक उनकी ही हां में हां मिलाते हैं। उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती थी और माधौ बापू ने बटवारा कबूल कर लिया। बड़के ने इसे अपनी पराजय के तई लिया और बापू से कट गये। इतना कट गये कि आज तक बोलते नहीं हैं। और यही ठाकुर आज फिर एक नयी मुद्रा में बापू के सामने थे।

ठाकुर का यह पैतरा माधौ बापू को अदर तक छील गया। उनका मन किया कि ठाकुर की नाक पर हनक कर घूसा मार दे और मारे झंझटो से पार हो जाये। राजा ठाकुर ने जो सवाल उनसे किया, माधौ बापू कुछ सोच नही पाये. सझा तक सोच-समझकर बताने का वायदा किया और अपने चक की ओर बढ आये। अपने खेतो की मेड पर पहुंचकर बापू रुक गये। खेतो की ललछौंह धीरे-धीरे पिलछौही हो रही थी। खेतो के पिलछौंहपन को उन्होने बेबस नजरो से देखा और फिर आकाश की ओर ताकने लगे। उनका आस्तिक मन शायद भगवान को गुहार रहा था।

बीच खेत मे कुछ देर खडे रहने के बाद माधौ बापू घर को लौट पड़े। खरामा-खरामा चलते हुए शकर के कधे और अपनी लाठी के सहारे घर आकर चारपाई पर लेट गये। तभी सामनेवाली दीवाल से बिल्ली ने ईंट गिरा दी। गिरा क्या दी, उसके निकलने से गिर गयी तो बापू को लगा कि दीवाल से ईंट नही, उनका कोई अग कटकर गिरा है।

उसके बाद शाम तक माधौ बापू चुपचाप चारपाई पर पडे रहे। शकर की समझ मे नही आया कि वे इतने उदास और व्याकुल क्यो है, आज तो दीवाली का दिन है।

बटवारे के बाद यह पहली दीवाली है। पिछले साल जब बापू ठीक थे, तमाम गट्टे-खिलौने आये थे और आयी थी गगराभर खीलें। पिछले कई सालो से दीवाली की दियालिया शकर जलाता रहा है। उससे पहले बडके जलाते थे और बडके से पहले बापू। जब जूनियर की परीक्षा मे शकर फर्स्ट आया तो उस साल की दीवाली मे ऐन टाइम पर बडके को न जाने क्या सूझी कि उन्होंने शकर को बुलाकर दियालिया जलाने को कह दिया। बडके की बात सुनकर शकर की आखे मझले को तलाशने लगी। उसकी समझ मे न आया कि यह पारिवारिक दायित्व बडके उसे क्यो सौप रहे है? अगर यह जरूरी ही हो तो मझले तो हैं। तभी नशे मे धुत्त मझले आ गये थे, झूमते हुए, गलगलाते और अट-शट बकते हुए। दियालियो से हटकर सबकी नजरें मझले पर टिक गयी। बापू का चेहरा तमतमा आया और अम्मा की जबान

छुरी बन गयी। वे बकने लगी थीं, 'नठिअऊ, मरीकटउनूं ! तुम आजौ इयौ माहुर पी आयेव। अदम जनमिव तौ पैदा होतै खन घीच मरोरि देतिव।'

'अच्छा-अच्छा, चुप्पै रहव, नाही तो याऊ राफट परी तौ सब भूलि जइहव।' अम्मा को डाट-डपटकर बापू ने चुप करा दिया। मंझले को पकड़कर बड़की भाभी कोठरी में ले गयी और सुला दिया। बिना किसी खास हंगामे के सब कुछ शात हो गया और तब शंकर की समझ में आ गया था कि यह पारिवारिक दायित्व बड़के ने मझले की बजाय उसे क्यों सौंपा था।

सब लोग शंकर को घेरकर बैठ गये थे। उसने पर्ई से दियालियों से तेल डाला और भतीजे-भतीजियों ने उनमें बातियां भिगो दी। घी की पांच दियालियां अलग रखने के बाद सबसे पहले उसने दियेला को माचिस से जला दिया और फिर सारी दियालिया जला दी गयी थी। कंडे की आग पर कुछ गट्टे और खिलौने फोड़ने के बाद उसने गरइया से निकालकर एक चम्मच घी आग पर रख दिया और दियालियों पर दो मुठ्ठी खीलें बिखेर दी। लोटे का पानी सात बार अंजुरी में भरकर दियालियों के चारो ओर आचमन किया और फिर धरती माता के पैर छू लिये। धुआं उठने लगा तो उसे अपने चेहरे पर बिखरने दिया। सांसों में समाने दिया। पूरा घर दीवाली की रोशनी से जगमगा उठा था। तब शकर ने भर-भर मूठा खील-खिलौने और गट्टे सबको दिये। बाद में परात से काट-काटकर मिठाई दी। सब ने छक-छककर खायी। तब तक बड़के भी खेतो में दियालिया जलाकर लौट आये थे। उन्होंने मंझले को जगाना चाहा, पर वे उठ नही पाये; शायद ज्यादा पी आये थे। शंकर और बड़के ने साथ बैठकर मिठाई खायी। जिंदगी में पहली बार दियालियां जलाते, खील-गट्टा और मिठाई बांटते हुए शकर को गर्व की अनुभूति हुई और सुख का एहसास भी। ऐसा गर्व, ऐसा सुख, जो कभी-कभी और किन्ही खास क्षणों में ही नसीब होता है।

और इस बार की दीवाली, दीवाली नहीं, कुछ और लगती है। एक दीवाली वह थी और एक दीवाली यह है। बखरी में बैठे माधो बापू यह सब टुकुर-टुकुर देख रहे हैं—घर के एक कोने में बड़के तथा दूसरे कोने में

मझले के बाल-बच्चे पानी मे सिझी दियालिया निकालकर पड़ोर से लिपी जगह मे रख रहे है। शकर भी तीसरे कोने मे पडोर कूटकर दियालिया रखने की जगह बना रहा है। जब जगह बन गयी तो अम्मा ने पानी से निकालकर दियालिया रख दी। तभी अचानक माधो बापू ने बड़के और मझले को आवाज दी। वे बापू के पास आये तो उन्होंने उनसे पूछा, 'हमरे हिस्सावाले तीन बिगहा खेतवा जोतिहो ?'

'हा-हा, दइ देव।' बड़के और मझले ने एक साथ जवाब दिया, मानो वे इसके लिए पहले से ही तैयार बैठे थे। बापू ने अपनी समस्या और शर्त उनके सामने रखी तो वे बगले झाकने लगे। थोड़ी देर तक बापू ने उनके उत्तर का इतजार किया और फिर बोले, 'कउनो जवाबु नाइ दीन्हिव कोउ ?'

'हमरे पास इत्ते रुपया कहा धरे हैं।' कहकर दोनो भाई चुप हो गये और थोड़ी देर बाद उठकर अपने-अपने बाल-बच्चो के पास खिसक गये तो माधो बापू को लगा कि लड़ाई मे अब वे एकदम से निहत्थे हो गये है। लड़के ही तो बाप के हथियार होते हैं, सोचते-सोचते उनकी नजर सामनेवाली अधूरी दीवाल पर टिक गयी। उन्हे लगा कि उनके घर मे नोना लग गया है, जो इसकी एक-एक ईंट को खाता जा रहा है। इस तरह अलग रहकर नोने को घर खाते हुए बेबस और लाचार आखो से देखा तो जा सकता है, किया कुछ नही जा सकता। सब लोग एक मे होते तो शायद कुछ किया जा सकता।

बड़के और मझले को दियालिया जलाते देखकर माधो बापू शंकर की ओर मुखातिब हुए, 'तुमहू अपनी दियाली जलाव शकर।'

'नाही बापू, तुम जला देव।'

'नाही बेटा।'

'नाही बापू, आजु तो तुमही का जलावै का परिहै।' शकर की जिद पर माधो बापू दियालिया जलाने को तैयार हो गये तो शकर ने जल्दी-जल्दी सारा सामान बखरी में इकट्ठा कर दिया। डेलवा मे फूले-खील और गट्टे-खिलौने रखे। अगियारी के लिए घी और मिठाई रखी। बिरौलिया से निकालकर कडे की आग रख दी और दियालियो मे तेल डालकर

बत्तिया भी। तब तक अम्मा लोटे में पानी ले आयी। बापू ने अपने बेकार वाले हाथ में किसी तरह से माचिस अटाकर दूसरे हाथ से घिस दी। फुर्र की आवाज करती हुई तीली जली तो बापू ने उसे एक दियाली की तरफ बढ़ाया। इसके पहले कि कोई बाती जलने पाये, तीली बुझ गयी। तब बापू ने दूसरी तीली निकाल ली। आज उनके सुन्न हाथ में पता नहीं कहां से इतनी ताकत आ गयी थी कि वह हरकत कर रहा था। दूसरी तीली जलाने के लिए हाथ उठा ही था कि जूतों की चरमराहट से उनके हाथ जहां के तहां टग गये। नजर थमने आप दरवाजे पर चली गयी। राजा ठाकुर आ गये थे। आते ही उन्होंने अपना सवाल दाग दिया, 'माधो भाई, सब सोचि-समझि लीन्हिव ?'

'...'

बापू ने कोई जवाब नहीं दिया तो चारपाई पर बैठते हुए राजा ठाकुर ने फिर कहा, 'का हो माधो भाई, बोलतेव काहे नाइ ?'

'ठाकुर बेटा, अबहिनै तो तुम जाव। साल भरे क्यार त्योहार है, को जानै, पारमात्मा तलक जिंदा रहिबे कि मरि जइबे, राति भरे केरि मोहलति अउर देव, सबेरे तलक सब सोचि-समझि कै बता देबे।'

'चाखौ माधो भाई, अइसे टारे ते तो काम चली ना। तुम कहत हौ तौ हम जात हन, लेकिन सबेरे तलक सब सोच-बिचार करि लेहेव।' कहकर राजा ठाकुर चल दिये। बापू उन्हें जाते हुए अपलक देखते रहे और जब खयाल आया तो फिर तीली घिसने की कोशिश करने लगे, लेकिन उनकी कोशिश सफल न हुई। उनका वह हाथ फिर मुर्दा हो गया। तब शंकर की ओर माचिस बढ़ाते हुए उन्होंने कहा, 'सिव शंकर।'

'काहे बापू ?'

'सिव बेटा, अब तुमही जलाव। हमरे बस क्यार अब कुछु नाइ रहो। अब तो सब कुछु तुमही का ख्याल का परी।' कहते-कहते माधो बापू का गला रुध गया। उनके शब्दों में निहित अर्थ को शंकर झेल नहीं पाया। उसकी चेतना पर हथौड़ा-सा पड़ा। बापू की आखें छलक आयी थीं। शंकर भी अपने आंसू रोक नहीं सका। बापू की असमर्थता, उसकी अपनी असमर्थता भी तो थी। वह घर को सभाले, कालेज देखे या खेती-बाड़ी की

चिंता करे। पढ़-लिखकर प्रोफेसर बनने के अपने सपने के आगे उसने बापू की अभिलाषा तक को ठुकरा दिया, अन्यथा अपने आगे ही वे शंकर का भी घर बसा देना चाहते थे। अचानक जब बापू ज्यादा बीमार हो गये तो ठाकुर से कर्ज लेकर उसने कानपुर में उनका इलाज करवाया। तमाम रुपया खर्च हो जाने पर दो महीने बाद डॉक्टरों ने जवाब दे दिया कि अब इनका इलाज करवाना बेकार है। जितने दिन चल रहे हैं, चल रहे हैं। अब इन्हें घर ले जाओ। बिना मतलब खर्चा मत बढ़ाओ। जो दवाएं लिख दी हैं, पिलाते रहना, शायद कोई चमत्कार हो जाये। डॉक्टरों की बातें सुनकर शंकर सिहर उठा था, पर न जाने क्यों उसे लगता रहता है कि बापू अभी बहुत दिन तक जिंदा रहेंगे।

माधो बापू के हाथ से माचिस लेकर शंकर ने चुपचाप दियालियां जलायीं और घर-आंगन में रख आया। दियालियों की रोशनी से यद्यपि पूरा घर जगमगा उठा था, पर उसे लग रहा था कि इतनी इफरात रोशनी के बावजूद सबके दिलों में कहीं बहुत घना अंधेरा है, जिसे कोई चिराग मिटा नहीं सकता। दीवाली की ये रोशनियां काली अंधेरी रात के भयानक अंधेरों को भले ही खत्म कर दें, पर हमारे सबके दिलों के अंधेरों को कौन दूर करेगा! कैसे दूर होंगे दिलों के ये खौफनाक अंधेरे, जिन्होंने संबंधों की चमक तक को लील लिया है। इन अंधेरों में सबधों की शिनाख्त करनी तो दूर, उनकी चमक तक दिखाई नहीं पड़ती, सोचते हुए शंकर ने डलवा में दियालियां, बातियां, माचिस तथा तेल की गरैया रखी और खेतों के लिए चल दिया।

जागौऽऽऽ···धरती माता जागौऽऽऽ···चारों ओर से तेज आवाजें उठ रही थीं। दूर-दूर तक जलती हुई दियालियों से दसों दिशाएं जगमगा उठी थीं। काली अंधेरी रात में आकाश में झिलमिलाते तारों की मानिंद झिलमिलाती धरती की ये रोशनियां शंकर को बहुत अच्छी लगती हैं। यह पहला मौका है, जब शंकर को खेत-खलिहान में दियालियां जलाने जाना पड़ रहा है। पहले तो बड़के ही जाया करते थे या फिर मंझले।

हाथ में ढेलवा लिये शंकर अपने खेतों की तरफ बढ़ा जा रहा था। कुछ लोग ऊंचे स्वर में दिवारी गा रहे थे और कुछ बड़ी तेज आवाज में धरती माता को जगा रहे थे—जागोऽऽ "धरती माता जागोऽऽ"'लोग धरती माता को क्यों जगाते हैं, शंकर ने अपने आप से प्रश्न किया और जवाब भी खुद दे लिया—शायद धरती माता को नहीं जगाया जाता, धरती के गर्भ में छिपे दानों को गुहार लगायी जाती है। अपने खेतों में पहुंचकर शंकर ने भी आवाज लगायी—जागोऽऽ'''धरती माता जागोऽऽ पूरी कोशिश के बावजूद शंकर को लगा कि उसकी आवाज पूरी की पूरी उभरी नहीं है, वह कहीं बीच में ही दबकर रह गयी है।

बड़के और मंझले अपने-अपने खेतों में दियालिया रखकर चले गये थे। शंकर ने उनके खेतों में जलती हुई दियालिया देखीं और फिर उसका ध्यान बड़के के हिस्से में स्थित कुएं पर चला गया। वहां पर कोई दियाली नहीं जल रही थी। फिर उसने मंझले के हिस्से में स्थित महुए के पेड़ को निहारा। उसके नीचे एक दियाली जल रही थी। अपने खेतों और आम के पेड़ की खोह में दियालिया रखने के बाद शंकर कुएं की ओर बढ़ गया।

पहले ढेर सारे महुए होते थे, सबके काम आते थे और अब महुओं का उपभोग सिर्फ मझले कर सकते हैं, क्योंकि महुआ मझले के हिस्से में है। माधौ बापू ने कुएं में बोरिंग करवाने की बात सोची थी। बोरिंग हो जाती तो सब के खेत सिंचते और अब बोरिंग तो दूर, बड़के पिपिया डलवाने तक की स्थिति में नहीं हैं। हो भी तो सिर्फ उनके ही खेत सिंच सकते हैं। शंकर के हिस्से में आम के पेड़ से सब लोग आम खाते, लेकिन अब कोई किसी के हिस्से की चीज नहीं खा सकता। पहले सब का एक ही आकाश था और अब सब का अपना-अपना, अलग-अलग आकाश हो गया है। उस आकाश के अलग-अलग रंग हैं। पहले घर एक सतरंगी इंद्रधनुष हुआ करता था और अब तो यह घर टुकड़ों-टुकड़ों में बिखर गया है और बिखरे हुए रंगों से कहीं इंद्रधनुष बनता है? सोचता हुआ शंकर बड़के के कुए की जगत पर एक दियाली जलाकर बापू के चक में पहुंच गया और वहां पर दियालियां जलाकर चुपचाप लौट आया। अम्मा और बापू के साथ बैठकर थोड़ा-बहुत खाया-पिया और फिर सब लोग अपने-अपने बिछावने में घने

गये। सोते समय शकर ने बापू से पूछा कि राजा ठाकुर क्या करने आये थे तो उन्होंने बताया कि सवेरे ठाकुर ने हिसाब लगाकर बताया था कि हम पर उनका एक हजार से ज्यादा कर्जा हो गया है। सो, कागजों पर दस्तखत करवाने के बाद वे बोले कि चाहे हमारे रुपये वापस कर दो, चाहे एक बीघे का बैनामा कर दो या फिर तीनों बीघे खेत दो साल तक जोतने-बोने को दे दो। हमने शाम तक सोच-विचार कर बताने का वादा किया था, वही पूछने आये थे।

'तो तुम का सोचो हऊ ?' शकर ने पूछा।

'हम का सोचि सकत हन, कोऊ का सोचि सकत है ? एक हजार रुपया दइ नाइ सकत हन। एक हजार के बदले मा तीन हजार के एक बिगहा क्यार बैनामा कइसे करि देन। दुइ साल खातिर तीनिव बिगहा दइ देबे तो खइबे का ?' कहकर बापू फिर चिंता में डूब गये। उन्होंने सोचा था कि बड़के या मझले एक हजार रुपये देकर खेत जोत लेते तो कम से कम घर की चीज घर में रहती। अब वे करें भी तो क्या, उनके तो हाथ ही जैसे कलम हो गये हैं। उनके ही क्यों, बड़के, मझले और शकर, सभी के तो हाथ-पाँव कलम हैं, क्योंकि सब अलग-अलग हैं। सब लोग एक में होते तो क्या मजाल थी कि ठाकुर ऐसी हरकत कर पाते। कुछ देर बाद शकर ने बापू को फिर कुरेदा, 'तो फिरि का करिहौ ?'

'करिबे का, करिही का सकत हन, लेकिन ठाकुर का हम अइस करन न देबे, चहे कुछु होइ जाय।' कहते-कहते बापू की आवाज तेज हो गयी, माने ठाकुर के खिलाफ कोई विकल्प उन्होंने सोच लिया हो। कौन-सा विकल्प उन्होंने सोचा है, यह पूछने की हिम्मत शकर को नहीं हुई, लेकिन ठाकुर का बिछाया हुआ जाल उसे साफ-साफ दिख गया था और फिर वातावरण में नीरवता व्याप गयी। इसके बाद कौन कब सोया, सोया भी या नहीं, कोई न जान सका। सवेरे गजरदम कुही की खड़खड़ाहट में शकर की आँख खुली और साथ ही अम्मा की भी। चार न जाने कब के बज चुके थे, पर आज शायद माधो बापू को समय का कोई ख्याल नहीं था। भर-भर-भर्र, भर-भर-भर्र बाहर दरवाजे पर राजा ठाकुर का ट्रैक्टर भरभरा रहा था। अम्मा ने उठकर किवाड़ खोले तो राजा ठाकुर अंदर आ गये

और बापू को आवाज दी, 'का हो माधौ भाई, सब सोचि-समझि लीन्हिव कि नाही ?'

माधौ बापू शायद अभी तक जागे नही थे। शंकर ने उनके मुंह से रजाई हटायी तो वे हिले तक नहीं। उसने उनका हाथ पकडा, वह ठडा था, लोहे की मानिंद। आशका मे भरकर उसने उनकी नाक के आगे हाथ किया तो सन्न रह गया। उनकी सांस बहुत धीमी थी और राजा ठाकुर को शायद देर हो रही थी। आंगन से ही उन्होने माधौ बापू को फिर गुहारा, 'बतउतैव काहे नाइ माधो भाई, का सोचो हुऊ ?'

1975

अनचाहे सफर

आवाज सुनकर हम लोग चौंके। टेबल पर बैठे खाना खा रहे थे कि अचानक कॉलबेल घुनघुनायी। हमारी नजरें दरवाजे पर टिक गयी। नन्ही को दरवाजा खोलने का इशारा कर मम्मी उठ गयी और हाथ-मुंह धोने लगी। दरवाजे खुले तो सोम सामने थे। वे अंदर आ गये। मम्मी उन्हें स्टडी में पहुंचाकर लौट आयी। सोम को अकेला छोड़कर उनका यों लौट आना मुझे कुछ अजीब-सा लगा। पिछले बरस तक सोम मेरे स्टूडेंट थे और टीचर के घर में एक स्टूडेंट का यों बिठा दिया जाना बेहूदी बात नहीं थी और शायद यही सोचकर मम्मी वापस डाइनिंग टेबल पर आ गयी थी। मेरे सोचने का एंगिल शायद दूसरा था और इसीलिए मुझे यह अच्छा नहीं लगा। जल्दी-जल्दी मैंने अपना खाना खत्म किया, हाथ-मुंह धोये और स्टडी में सोम के पास पहुंच गयी। वे 'वीकली' के पन्ने पलट रहे थे। मुझे देखकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ दिये। परस्पर अभिवादन के बाद हम बैठ गये। इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, सोम ने डिब्बा मेरी ओर बढ़ा दिया। डिब्बा लेते हुए मैंने पूछा, 'यह क्या है भई?'

'मिठाई।'

'किस खुशी में।'

'एप्वॉयंटमेंट की।'

'कहां ?'

'यहीं डी० एन० एम० कॉलेज में।'

'गुड्ड।'

इसके बाद कुछ और बातें होती रहीं। सोम अपनी रिसर्च पर बतियाते रहे कि किस तरह बी० ए० से ही वे टॉपिक पर सोचते और मैटर इकट्ठा करते रहे हैं। रजिस्ट्रेशन होने भर की देर है। पी-एच० डी० मिलने में कठिनाई नहीं होगी. और फिर वे उठ खड़े हुए थे। लाल जिल्द की एक किताब मेरी ओर बढ़ा दी और बाहर निकल गये। उनके चले जाने के बाद मैंने किताब खोली तो उसमें एक पर्ची थी। तब मैं उसे पर्ची ही समझी थी। खोलकर पढ़ा तो पढ़ती ही रह गयी। न जाने कितनी देर तक खड़ी रही, जस की तस।···

'दीदी!'

'अऽऽ!'

'का काउनिव धान होइ गय ?'

'नाहीं तौ।'

नन्हीं की आवाज से चौंककर मैंने स्थिति संभाली। खड़े-खड़े वाकई मुझे देर हो गयी थी। इस बीच सोम की पर्ची को मैंने तीन बार पढ़ा और किसी सम्मोहन के वशीभूत-सी सब कुछ भूल गयी। काम निबटाकर नन्हीं बाहर निकल गयी तो दरवाजे बंदकर मैं दबे पांव ऊपर चढ़ आयी। मम्मी के हाथ में सिगरेट थी और मुंह में धुआं। मम्मी ने आज फिर पी थी। आहट पाते ही उन्होंने सिगरेट फर्श पर मसल दी। गिलास चारपाई के नीचे खिसका दिया और बोतल को सिरहाने, तकिया के नीचे। मैं उनके पास गयी तो वे मुंह फेरकर लेट गयीं। बदबू का भभका मेरे पास तक आ गया था। चारपाई पर बैठकर मैं उनके बाल सहलाने लगी और फिर बोली, 'मम्मी, डाक्टर ने आपको मना किया है।'

'शानू!'

'हां मम्मी, ये दोनों चीजें आपके लिए खतरनाक हैं।'

'मैं क्या करूं शानू, जब भी कोई बात···'

'आज क्या हुआ?'

'सोमू इतनी रात को···'

'ऐसा नहीं है मम्मी, वह तो अपने एप्वॉयटमेंट की सूचना देने आया था।'

'सच्च!'

'हां मम्मी, यह रही उसकी मिठाई।' कहते हुए बर्फी का टुकड़ा मैंने उनके मुह में ठूस दिया। बबली को आवाज देकर कुछ टुकड़े उसे दिये और फिर मम्मी को लिटाकर उनका सिर दबाने लगी।

मम्मी सो गयी हैं, लेकिन मुझे नींद नहीं आ रही है। मेरी नींद सोम ले गये हैं और शायद अपनी नींद यहां छोड़ गये हैं। मेरी तरह वे भी जाग रहे होंगे और मेरे बारे में सोच रहे होंगे, जैसे कि मैं उनके बारे में सोच रही हूं।

कल ठीक दस बजे वे आ जायेंगे। एक मिनट भी इधर से उधर नहीं हो सकते। टाइम के बड़े पक्चुअल है। कम-से-कम मेरे स्टूडेंट के रूप में तो रहे ही हैं। कल भी वे समय पर आयेंगे। इस रूप में वे यहां पहली बार आ रहे हैं। आते पहले भी रहे है, पर इस रूप में नहीं। उनके कल के और पहले के रूप में फर्क होगा, बहुत बड़ा फर्क। तब हमारे सबंध टीचर और स्टूडेंट के थे। वे स्टूडेंट थे और मैं उनकी टीचर। सोम इस रूप में मेरे घर आ सकते हैं, मैंने कभी कल्पना तक न की थी और शायद सोम ने भी नहीं सोचा होगा।

उस दिन बात ही कुछ ऐसी हो गयी थी कि हम दोनो का वह संबंध, इस संबंध की बुनियाद बन गया। के० पी० एन० मार्केट में ढेर सारा सामान खरीदा था·· बबली के लिए कुछ किताबें, अपने और मम्मी के लिए कपड़े, टेबल और इजीचेयर। सोच रही थी कि इतना सामान किस तरह ले जाऊंगी, तभी सोमू दिख गया था। मिलते ही उसने हाथ जोड़कर नमस्ते की और आकर बगल में खड़ा हो गया। ढेर सारा सामान देखकर उसने पूछा था कि इतना सामान कैसे संभाल पायेंगी। तब मैंने कहा था, 'मैं भी

कुछ परेशानी अनुभव कर रही थी। अब तुम आ ही गये हो तो घर तक साथ चलो। इसलिए जो किताब मांग रहे थे, वह भी ले लेना।'

मेरा जवाब सुनकर वह रिक्शा ले आया। उस पर सारा सामान रखवाने के बाद इंजीनियर लेकर अलग खड़ा हो गया। मैं रिक्शे पर बैठ गयी थी और सोचा कि वह भी बैठ जायेगा। रिक्शा चल पड़ने पर भी जब वह खड़ा रहा तो आवाज देकर मैंने बैठने को कहा। सकुचाते हुए वह चुपचाप बैठ गया था। मैं नोट कर रही थी कि वह इस कोशिश में है कि उसका शरीर मेरे शरीर से छूने न पाये। ऊबड़खाबड़ सड़क पर रिक्शे के हिचकोलों में बार-बार हमारे शरीर एक-दूसरे के करीब आ जाते। ऐसी स्थिति में वह खिसककर रिक्शे की बार्डर से यों सटता जाता कि मुझे उसकी हरकत का आभास न होने पाये। यह देखकर मुझे भी न जाने क्या शरारत सूझ गयी कि खुद-ब-खुद उससे सटने का प्रयास करने लगी। वह किनारे की तरफ खिसकता रहा और रिक्शे की बार्डर से चिपक-सा गया। तब मैंने कुछ और बेरहम होकर अपना पैर उसके पैर के ऊपर रख दिया। ऐसा करते ही मेरे शरीर में करंट-सी दौड़ गयी। सोमू को यह सब कैसा लगा होगा, नहीं जानती, पर उसकी इस स्थिति को देखकर मेरे अंदर हजारों फूल एक साथ खिलकर महमहा उठे थे। थोड़ी और हिम्मत करके मैंने अपना शरीर उसके शरीर से चिपका-सा दिया। रिक्शे की धचक-पचक में हमारे शरीर आपस में एक-दूसरे से रगड़ने लगे। इस रगड़ से मुझे एक अजीब-सी उत्तेजना महसूस हो रही थी, जिसे शब्दों में बांध पाना मेरे लिए संभव नहीं। मैं तो सिर्फ इतना कह सकती कि मुझे अच्छा लग रहा था, बहुत अच्छा। मैं चाह रही थी, सड़क का तल विषम से विषमतर होता जाये, रिक्शे की धचक-पचक बढ़ती जाये, बढ़ती जाये और हमारे शरीरों की रगड़ तीव्र से तीव्रतर होती जाये। मैं ये बातें सोचती रही कि रिक्शा नेहरू नगर की एट्टी फीट रोड पर आ गया। रिक्शे की धचक-पचक खत्म हो गयी। शरीरों की रगड़ का सिलसिला थम गया। चंद मिनट बाद रिक्शा दरवाजे पर पहुंच चुका था और हमारे शरीर एक-दूसरे से अलग हो गये।

सोमू को स्टडी में बिठाकर नन्हीं से चाय लाने को कहा और ऊपर

चली गयी। फ्रेश होकर लौटी तो सोमू को कुछ पढते हुए पाया और जो कुछ वह पढ रहा था, देखकर एकबारगी मुझे लगा कि किसी परिचित पुरुष के सामने निर्वसन हो गयी हूं। अभी तक सोमू के प्रति उसकी टीचर होने की जिस सुपीरियॉरिटी-कॉम्प्लेक्स मे ऊभ-चूभ थी, दयाल का खत सोमू के हाथ मे देखकर उससे कई गुना इन्फीरियॉरिटी-कॉम्प्लेक्स के गड्ढो मे गिर गयी। मुझे अपना व्यक्तित्व सोमू से बौना लगने लगा। सोमू ने तुरत ही उस खत को किताब मे दबाकर रैक मे रख दिया। नन्ही चाय लेकर आयी तो सोमू की तरफ बढ़ाते हुए मैंने कहा था, 'सोमू, चाय।' चाय लेकर वह चुपचाप सिप करने लगा। चाय के बाद अल्मारी से निकालकर मैंने उसे हक्सले की किताब दी थी। किताब लेकर वह उठ खड़ा हुआ तो मैंने उसे रोका था। चाय देकर नन्ही अपने काम मे बिज़ी हो गयी और मैं अपेक्षाकृत गभीर हो गयी थी, मेरे साथ सोमू भी, 'पढ लिया दयाल का खत?'

'जी...' सोमू मकपका गया और सिर उठाकर विस्मय से देखने लगा, मानो इस अपराध के लिए मैं उसे कोई सजा देनेवाली हू। तब अपेक्षाकृत मधुर शब्दो मे मैंने उसे सभाला था, 'कोई बात नही सोमजी!'

मेरे इन शब्दो के बाद सोमू को और भी अधिक विस्मय हुआ, मुझे भी। सोमू की जगह सोम और उसके आगे 'जी' का यह अप्रत्याशित और आयासहीन प्रयोग क्यो और कैसे हो गया, मैं न जान सकी। उसने स्पष्टीकरण देना चाहा था, 'अल्मारी से निकालकर गोडार्डवाली किताब देख रहा था कि यह खत...'

'चलो, अच्छा ही हुआ, जो बिना दिखाये ही तुमने देख लिया। इस खत की वजह से मैं काफी उलझन मे हूं।'

स्पष्टीकरण पूरा होने से पहले ही बात काटकर मैं अपनी बात कह गयी। उस दिन सोमू ने कुछ नही कहा था। हम दोनो काफी देर तक चुपचाप बैठे रहे और फिर सोमू चला गया था। इसके बाद वह कभी-कभी घर आने लगा और सोमू से सोमजी होकर मेरा अतरग हो गया। वही सोमजी कल एक नये रूप मे मेरे घर आयेंगे, मेरे पास, मेरे सामने वे होंगे, मैं हूगी। बीच में टेबल का फासला होगा, सिर्फ टेबल का फासला। मैं चाय के लिए कहूगी तो रोज की तरह वे इन्कार मे सिर हिलायेंगे, लेकिन मैं

उस . का

चाय बनाऊंगी, अपने हाथों से। उनके लिए अपने हाथों से कभी चाय नहीं बनायी। प्रायः नन्हो ही बनाती रही है। कभी-कभार जब वह नहीं हुई है तो बबली ने बना दी है, मगर कल तो मैं ही बनाऊंगी। बबली कॉलेज चली जायेगी और मम्मी अपने ऑफिस। नन्हो को दो घंटे की छुट्टी देकर अकेले ही उनका इंतजार करूंगी। आने के दस-पांच मिनट पहले की आकुल प्रतीक्षा और फिर कॉलबेल की कुनमुनाहट। दरवाजे खोलने की प्रक्रिया। उनकी पदचाप। दिल की धड़कन। स्टडी में खामोशी का एक लम्हा और फिर चाय की अनुनय-विनय···सोचकर ही अनिर्वचनीय किलक-पुलक समा गयी है।

टन्न···टन्न···टन्न···दस बजते हैं तो मेरा ध्यान क्लॉक पर चला जाता है और फिर मम्मी पर। सोती हुई मम्मी के चेहरे पर न जाने क्या तलाशती हूं और फिर देखने लग पड़ती हूं क्लॉक के पेंडुलम को। न इधर ठहर पाता है, न उधर। न ही बीच में ठहरकर विश्राम ले पाता है। देखने में तो सुंदर है, पर बेचारे की जिंदगी भी क्या है—टिक् टिक् टिक् टन्न··· वही गति, गति और गति।···एकरसता, घुटन, तनाव, तनाव और तनाव। कभी न खत्म होने वाली एक दौड़···

क्लॉक से हटकर मेरी नजर पापा की तस्वीर पर चली गयी है और डूब गयी हूं पापा की यादों में। साफ, बिल्कुल साफ दूधिया कुर्ता-पाजामा, लंबा-सा शरीर और लंबे-लंबे हाथ। हाथ में बेंत और पैरों में कपड़े के जूते। आंखों में चश्मा। रिस्ट-वाच विद गोल्डन चेन। पापा का यही हुलिया था। उनकी भूरी-भूरी आंखों में समस्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की अद्भुत क्षमता थी। न जाने कितने लोगों की समस्याओं का समाधान पापा ने क्षणभर में निकाला था। उनके चरित्र में ऐसी कोई बात न थी, जो लोगों की नजर में खटकनेवाली हो। उन्होंने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा, अहित नहीं किया। हो सका तो जरूरतमंदों की जरूरतें पूरी कर दीं, वक्त पर उनका काम चला दिया, लेकिन पिछले पांच-छह साल से पापा, सिर्फ पापा थे। उनके अंदर का बचपन कुम्हला गया था, कैशोर्य सूख गया था, यौवन मुरझा गया था, जबकि एक जिंदा इंसान में सभी पत्तों का रहना जरूरी है। पापा में भी कभी था, किंतु शहरी जिंदगी में आयी विकृतियों

चली गयी। फ्रेश होकर लौटी तो सोमू को कुछ पढ़ते हुए पाया और जो कुछ वह पढ़ रहा था, देखकर एकबारगी मुझे लगा कि किसी परिचित पुरुष के सामने निर्वसन हो गयी हूं। अभी तक सोमू के प्रति उसकी टीचर होने की जिस सुपीरियॉरिटी-कॉम्प्लेक्स में ऊभ-चूभ थी, दयाल का खत सोमू के हाथ में देखकर उसमें कई गुना इन्फीरियॉरिटी-कॉम्प्लेक्स के गड्ढों में गिर गयी। मुझे अपना व्यक्तित्व सोमू से बौना लगने लगा। सोमू ने तुरंत ही उस खत को किताब में दबाकर रैक में रख दिया। नन्ही चाय लेकर आयी तो सोमू की नम्रता बढ़ाते हुए मैंने कहा था, 'सोमू, चाय।' चाय लेकर वह चुपचाप सिप करने लगा। चाय के बाद अलमारी से निकालकर मैंने उसे हवसले की किताब दी थी। किताब लेकर वह उठ खड़ा हुआ तो मैंने उसे रोका था। चाय देकर नन्ही अपने काम में बिजी हो गयी और मैं अपेक्षाकृत गंभीर हो गयी थी, मेरे साथ सोमू भी, 'पढ़ लिया दयाल का खत?'

'जी···' सोमू सकपका गया और सिर उठाकर विस्मय से देखने लगा, मानो इस अपराध के लिए मैं उसे कोई सजा देनेवाली हूं। तब अपेक्षाकृत मधुर शब्दों में मैंने उसे संभाला था, 'कोई बात नहीं सोमजी!'

मेरे इन शब्दों के बाद सोमू को और भी अधिक विस्मय हुआ, मुझे भी। सोमू की जगह सोम और उसके आगे 'जी' का यह अप्रत्याशित और आयासहीन प्रयोग क्यों और कैसे हो गया, मैं न जान सकी। उसने स्पष्टीकरण देना चाहा था, 'अलमारी से निकालकर गोडाउंवाली किताब देख रहा था कि यह खत ··'

'चलो, अच्छा ही हुआ, जो बिना दिखाये ही तुमने देख लिया। इस खत की वजह से मैं काफी उलझन में हूं।'

स्पष्टीकरण पूरा होने से पहले ही बात काटकर मैं अपनी बात कह गयी। उस दिन सोमू ने कुछ नहीं कहा था। हम दोनों काफी देर तक चुप-चाप बैठे रहे और फिर सोमू चला गया था। इसके बाद वह कभी-कभी घर आने लगा और सोमू से सोमजी होकर मेरा अंतरंग हो गया। वही सोमजी कल एक नये रूप में मेरे घर आयेंगे, मेरे पास, मेरे सामने वे होंगे, मैं हूंगी। बीच में टेबल का फासला होगा, सिर्फ टेबल का फासला। मैं चाय के लिए कहूंगी तो रोज की तरह वे इन्कार में सिर हिलायेंगे, लेकिन मैं

उस जनपद का

चाय बनाऊगी, अपने हाथों से। उनके लिए अपने हाथों से कभी चाय नही बनायी। प्राय: नन्ही ही बनाती रही है। कभी-कभार जब वह नहीं हुई है तो बबली ने बना दी है. मगर कल तो मैं ही बनाऊगी। बबली कॉलेज चली जायेगी और मम्मी अपने ऑफिस। नन्ही को दो घटे की छुट्टी देकर अकेले ही उनका इतजार करूगी। आने के दस-पाच मिनट पहले की आकुल प्रतीक्षा और फिर कॉलबेल की कुनमुनाहट। दरवाजे खोलने की प्रक्रिया। उनकी पदचाप। दिल की धड़कन। स्टडी में खामोशी का एक लम्हा और फिर चाय की अनुनय-विनय'''सोचकर ही अनिर्वचनीय सिलक-पुलक समा गयी है।

टन्न'''टन्न'''टन्न'''दस बजते हैं तो मेरा ध्यान क्लॉक पर चला जाता है और फिर मम्मी पर। सोती हुई मम्मी के चेहरे पर न जाने क्या तलाशती हू और फिर देखने लग पड़ती हूं क्लॉक के पेंडुलम को। न इधर ठहर पाता है, न उधर। न ही बीच में ठहरकर विश्राम ले पाता है। देखने में तो सुदर है, पर बेचारे की जिंदगी भी क्या है—टिक् टिक् टिक् टन्न''' वही गति, गति और गति।'''एकरसता, घुटन, तनाव, तनाव और तनाव। कभी न खत्म होने वाली एक दौड़'''

क्लॉक से हटकर मेरी नजर पापा की तस्वीर पर चली गयी है और डूब गयी हू पापा की यादों में। साफ, बिल्कुल साफ दूधिया कुर्ता-पाजामा, लबा-सा शरीर और लबे-लंबे हाथ। हाथ में बेत और पैरों में कपड़े के जूते। आखों में चश्मा। रिस्ट-वाच विद गोल्डन चेन। पापा का यही हुलिया था। उनकी भूरी-भूरी आखों में समस्याओं को सूक्ष्म दृष्टि से देखने की अद्भुत क्षमता थी। न जाने कितने लोगों की समस्याओं का समाधान पापा ने क्षणभर में निकाला था। उनके चरित्र में ऐसी कोई बात न थी, जो लोगों की नजर में खटकनेवाली हो। उन्होंने कभी किसी का बुरा नहीं चाहा, अहित नहीं किया। हो सका तो जरूरतमदों की जरूरतें पूरी कर दी, वक्त पर उनका काम चला दिया, लेकिन पिछले पांच-छह साल से पापा, सिर्फ पापा थे। उनके अदर का बचपन कुम्हला गया था, कैशोर्य सूख गया था, यौवन मुरझा गया था, जबकि एक जिंदा इंसान में सभी पनों का रहना जरूरी है। पापा में भी कभी था, किंतु शहरी जिंदगी में आयी विकृतियों

और विसंगतियों ने उनकी जीवन-सरिता के निर्मल जल को गंदा कर दिया, इतना गंदा कि वह सड़कर दुर्गंध पैदा करने लगा और फिर उस सरिता को सूख जाना पड़ा। पापा एक सरिता की याद भर रह गये। हँसी के ठहाके लगाते मैंने उन्हें अपने बचपन में कभी देखा था, जब वे गांव जाते या फिर दस-पांच रोज के लिए मुझे शहर ले आते थे। इंटर पास कर जब गांव छोड़कर कानपुर आयी, तब पापा कुछ अधिक ही गंभीर रहने लगे थे। डी० जी० कालेज से बी० ए० कर जब मैं एम० ए० के लिए डी० ए० वी० कालेज में दाखिल हुई तो पापा गंभीरतर हो गये थे। लगता था कि उनके पास कहने के लिए कुछ बचा नहीं है और यदि बचा भी है तो अभिव्यक्ति के सारे दरवाजे उनके लिए बंद हो चुके हैं, लेकिन मैं जानती [redacted] कि पापा के पास कहने के लिए ढेर सारी बातें थीं, चाहते तो कह भी सकते थे, किंतु वे चुप ही रहे। वे शायद चुप न रहते, पर एक बहुत बड़ी भूल उन्हें चुप रहने के लिए विवश किये रही, जीवन भर।

जी० टी० रोड के किनारे बसे कपूरपुर जैसे गांव के गवई परिवेश में पल-बढ़कर उन्होंने एक शहरी संस्कारोंवाली लड़की यानी मम्मी से शादी की थी, लेकिन संस्कारों की टकराहट में वे टूट गये, हार गये। मंदिर की घंटियों और शंख की आवाज की जगह रिकार्ड-प्लेयर, पॉप म्यूजिक, डांस, क्लब, शराब और···और यह सब पापा को रास नहीं आया था। जिस घर में हम रह रहे हैं, पापा को शादी में मिला था और पिंजरे में बंद पक्षी की तरह पापा इस घर की चौखट में कैद हो गये। वे चाहते तो इससे मुक्त भी हो सकते थे, पर यह शादी उन्होंने बाबा के चुने हुए रिश्ते को ठुकराकर की थी और बाबा ने उन्हें चैलेंज किया था कि बेटा, संस्कारों की टकराहट में जीत नहीं सकोगे और उनके इस चैलेंज को चुनौती के रूप में स्वीकार कर पापा ने अपने आपको इस दमघोंट वातावरण में झोंके रखा। पापा हार गये थे, लेकिन हारकर भी बाबा की नजरों में जीतने का ढोंग करते हुए मर गये। बाबा को कभी इस बात की भनक भी नहीं लगने पायी कि वह और बेटे के बीच कहीं कोई कशमकश भी है।

मम्मी का सभा-सोसायटियों में जाना पापा को रुचा नहीं था। ऑफिस के अलावा एक नाइट कोचिंग में डॉक्टर चड्ढा के साथ पार्टनरशिप की बात

भी उन्हे खली और फिर मम्मी उनके इन्कार करने पर अकेले ही क्लब जाने लगी। पापा ने इन सब कामो से मम्मी को बहुत रोका, आगा-पीछा समझाया, अपनी जिंदगी का वास्ता दिया, मेरी और बबली की सौगध दी, पर मम्मी के आगे उनकी एक न चली और फिर वे तनहा हो गये, इतने कि जिसकी कोई इतहा नही। डाली से टूटे फूल की मानिंद पापा सूख गये। नगर की चहल-पहल के बीच मदिर की तरह मौन हो गये, जिससे शब्दो का प्रतिदान नही मिलता। मिलती है तो सिर्फ अपनी ध्वनि की प्रतिध्वनि, और वह प्रतिध्वनि ही मेरा संबल थी। अब वह संबल भी खत्म हो गया है।

घर के मनचाहे माहौल के अभाव में पापा शहर की भीड़ का अंग बन गये थे। दरिया की लहरों मे डूबता आदमी जिस बेबसी से छटपटाता है, वैसी बेबसी मे भीड के दरिया मे छटपटाते हुए पापा को मैंने देखा था। मम्मी के चारो तरफ भीड थी और पापा भी उसी भीड़ के एक अंग थे। इस भीड़ से इतर पापा एक पति की तरह जीना चाहते थे। वे चाहते थे कि भीड़ के इस दरिया से निकलकर मम्मी उन्हे सहेजें-सभालें। इस भीड़ की वजह से पति-पत्नी का पारपरिक रिश्ता, जो टूट-सा गया है, मम्मी पूर्ववत् कायम करें, किंतु मम्मी के पास ऐसे रिश्ते निभाने या फिर से कायम करने का वक्त ही कहा था। मम्मी खुद भी तो भीड़ का एक अंग बनकर जी रही थीं। भीड़ की धक्कमपेल में उन्हे यह भी याद नही रहा था कि उनका कोई पति है और लडकियां भी, जिनके प्रति उनकी कोई नैतिक जिम्मेदारी है। दरअसल मम्मी के पास खुद भी सुस्ताने तक का समय नही रह गया था।

व्यस्तता और व्यस्तता। तेजी और तेजी। दौड़ना और दौडना। यहा से वहा, वहा से यहा और न जाने कहा-कहा! यांत्रिकता के पसरते हुए डायनासोरीय डैनों ने मम्मी की जिंदगी को अपने आप मे पूरी तरह से जज्ब कर लिया था। इंसान से इतर मम्मी एक यंत्र बन गयी थी; जबकि पापा ने यांत्रिकता की शीत-लहर से अपने आपको बचा लिया था। वे मुझे भी इससे दूर रखना चाहते थे। इसलिए मम्मी से लड़-झगडकर मुझे बाबा के पास गाव मे पलने-बढ़ने दिया। गाव से शहर आकर मैंने पाया था कि मम्मी कुछ अधिक ही चिड़चिड़ी हो गयी हैं। पापा और मम्मी अपने आप

एक संयुक्त पावर न होकर पावर की अलग-अलग यूनिट हो गये थे। सबधों की आग बुझने लगी और धीरे-धीरे हमारे सबध निरर्थक हो गये, जिनके प्रति किसी को कोई मोह, कोई लगाव नही रह गया।

अब जब पापा नही रहे, मम्मी ने क्लब जाना छोड दिया है। उनकी सामाजिक गतिविधिया न्यून हो गयी है। कोचिंग छूट गयी है। मम्मी के जीवन मे यह विलोम परिवर्तन क्यो हुआ ? अब तो वे कुछ भी करने के लिए और स्वतत्र हो गयी हैं। लगता है कि जिंदगी के बारे मे वे गभीरता से सोचने लगी है, लेकिन अब उनका सोचना व्यर्थ है। जब उन्हे जिंदगी को गभीरता से लेना चाहिए था, तब नही लिया और अब जिंदगी की बागडोर उनके हाथ से छूट चुकी है।

अब तो जीवन का क्रम ही बदल गया है। पापा के हाथो मे दरवाजे के चबूतरे पर शिवलिंग का स्नान बद हो गया है और बद हो गया है उनका अभिषेक तथा भोग। पापा के साथ ही कही दूर चली गयी है अगरबत्ती की भीनी-भीनी खुशबू। नीम के पेड पर बैठा चिडियो का झुड अब पापा का इतजार किया करता है। नहाने के बाद अपने गोरे-गोरे हाथो मे मुट्ठी भर चावल लेकर जब पापा फर्श पर बिखेरते तो चिडियो का झुड टूट पडता था। पापा के यही कुछ क्षण खुशी और आत्मशाति के होते थे। इसके बाद वे आवाज देते और सब लोग डाइनिंग-टेबल पर आ जाते। चुपचाप खाना खाते। काम की एकाध बात होती और फिर सब लोग अपने-अपने काम पर। मम्मी ऑफिस चली जाती और पापा कॉलेज। हम दोनो भी अपनी-अपनी राह निकल जाती। ऊपर से देखने पर हम लोगो की जिंदगी मे कही कोई कशमकश नही दिखती थी, पर अदर ही अंदर बहुत कुछ सुलगता रहता था, लेकिन पापा उसे अपने सीने मे दबाये घुटते रहे।

मम्मी का क्लब जाना पापा को बेहद खला था। रोककर भी पापा मम्मी को रोक नही सके। उन्हे सहना पड़ा था यह बोझ। खुद का मानसिक और चर्चाओ-अफवाहो का सामाजिक बोझ। क्षण, दो क्षण नही, समय के सपूर्ण आयाम, अहर्निश। उसे सहना, उसे झेलना पापा की मजबूरी थी। यह मजबूरी उन्हे घोलती गयी, वे घुलते गये, किसी हिमानी की तरह। और एक दिन वह भी आया, जब पूरी की पूरी हिमानी गलकर बह गयी। यह

हिमानी टिकी रह सकती थी, अगर मम्मी अपनत्व और प्यार के स्पर्श की शीतल तासीर देकर उसकी अतिरिक्त उष्मा सोख लेती, मगर मम्मी ने ऐसा नहीं किया, नहीं कर सकी।

मेरी और दयाल की दोस्ती भी पापा की आंखो मे शूल बनी थी, किंतु उन्होने न तो मुझे कभी टोका और न ही मना किया। एक बार उन्होने मोती झील मे दयाल के साथ मुझे देखा था। मैं घास पर बैठी थी और दयाल वही लेटा था। मैं उसके बाल सहला रही थी। उसके हाथ मे गुलाब का फूल था और···और हम हस पडे थे। इसी हसी मे मेरा सिर उठ गया तो पापा दिख गये थे। पापा ने मुझे देख लिया था और मैने पापा को। दयाल की नजर पापा पर नही पडी थी। मैं चुप हो गयी। दयाल ने पूछा तो मैने पापा की ओर इशारा कर दिया था—हाथ मे लम्बा-सा बेंत झुलाते, लम्बे-लम्बे डग भरते पापा वापस जा रहे थे। मेरी धुकधुकी पर हाथ रखकर दयाल ने कहा था, 'इसमे घबराने की क्या बात है, मम्मी तो चाहती ही हैं और पापा ने न चाहा तो हम कोर्टमैरिज कर लेंगे। दयाल की बातों से मुझे इत्मीनान तो हुआ, लेकिन पापा के इस तरह लौट जाने मे मेरा मन वहा रम नही सका। उठकर हम दोनो चले आये थे। घर में घुसते ही शरीर मे सिहरन-सी हुई। चुपचाप जाकर स्टडी मे पढने लगी। कई दिन तक पापा के सामने नही पडी। घर मे सिर नही उठा सकी। सोचती रही कि पापा कुछ न कुछ कहेगे जरूर, पर पापा ने बहुत दिन तक कुछ भी नही कहा था। कई महीने बाद एक दिन अपने पास बुलाकर [illegible] हाथ फेरते हुए उन्होने एक नेक सलाह दी थी, '[illegible] दयाल [illegible] लडका है। यह साथ, यह दोस्ती तुम्हे [illegible] अपनी जिंदगी और भविष्य को मत [illegible] और छत मे झूलते पखे पर नजर [illegible] की सलाह मानना चाहकर भी [illegible] पापा मुझसे भी कट गये। [illegible] चल रही थी। पापा ने [illegible]

[illegible]

कर दिया। आज यह सब सोचकर मैं अपने अंदर एक तूफान-सा महसूस कर रही हूं। झंझावातों का लम्बा-सा सिलसिला झेल रही हूं। मम्मी के अंदर आंधी नहीं, तूफान नहीं, हलचल या भूचाल नहीं, बुझी हुई राख का ढेर है और मैं राख के ढेर में दबी आग की तरह पड़ी हूं। अमरीका से दयाल ने लिखा था, 'वीनू डार्लिंग, शादी और जनम-जनम के बंधन जैसे पिटे हुए शब्दों से मुझे चिढ़ होने लगी है। यहां आकर मुझे तो फास्ट लाइफ पसंद आ गयी है। आज के जमाने में शादी का कोई औचित्य भी तो नहीं रह गया है। अब तुम मेरी बीवी नहीं, पार्टनर बन सकती हो, अन्यथा किसी से भी मैरिज कर लो। मैं अगली जून तक इंडिया लौट रहा हूं।'

दयाल के इसी खत को उस दिन सोमू ने पढ़ लिया था। इस खत को मैंने बीसियों बार पढ़ा है। विश्वास नहीं होता कि दयाल ऐसा भी लिख सकता है, पर उसकी हैंडराइटिंग अविश्वास के सारे सूत्र छितरा देती है। एकबारगी वैसी लाइफ की कल्पना करती हूं तो कांप जाती हूं और फिर विचारों की धुंध मुझे घेर लेती है।

मम्मी और पापा की शादी हुई जरूर थी, पर बंधन कहां थे? उन्मुक्त विचरण के लिए दोनों ही तो मुक्त थे, फिर भी सुखी क्यों नहीं रह सके, कहां मिली संतुष्टि, कहां है तृप्ति का अंत, मैं किसी सूत्र की तलाश करती हूं, किंतु कोई सूत्र हाथ नहीं लगता। प्रश्नों के जंगल में भटक जाती हूं। अब जब कि पापा नहीं रहे तो किसी पुरुष के सहारे का अभाव सामने लगा है। मुझे लगता है कि मैं किसी का इंतजार कर रही हूं। वह कोई खास चेहरा नहीं है, वह सिर्फ यह है—एक पुरुष, एक सबल। वह चाहे दयाल हो, सोमू हो या कोई और।

उम्र के चढ़ाव के साथ एक समय ऐसा भी आता है, जब प्यार-व्यार निरर्थक लगने लगता है। प्रियतम का शारीरिक संसर्ग न मिलने पर शरीर किसी भी विपरीत सेक्स से संसर्ग की कामना करने लगता है और मैं कुछ ऐसा ही महसूस कर रही हूं। मेरी ऐसी ही मानसिक स्थिति में अभी थोड़ी देर पहले सोम आये थे और यह खत दे गये हैं। उन्होंने लिखा है, 'वीनूजी, मुझे आपके अतीत और वर्तमान, दोनों की खबर है। अगर मम्मी या दयाल की तरह फास्ट लाइफ बितानी है, तब तो बात ही और है, अन्यथा मेरी

जिंदगी की सूनी चौखट आपका इंतजार कर रही है। गांव से बापू ने शादी के बारे में लिखा है और इस संबंध में वे जल्दी ही कानपुर आनेवाले हैं। किसी से तो शादी होनी ही है। कोई तो जिंदगी के दरवाजे पर दस्तक देने आयेगा ही। चाहो तो तुम आ सकती हो। दो-तीन बरस के इस परिचय में जितना समझ पाया हूं, मुझे तुम पसंद हो। कल दस बजे मैं आऊंगा, अपना निर्णय बता देना।'

सोम के खत को लिये रात देर तक जागती रही। सोम के बारे में सोचती रही—सीधा-सादा निहायत ही शांत-सा लड़का। शहरी जिंदगी से कुछ कटा-कटा-सा, गांव की सादगी, सहजता और निश्छलता से ऊभ-चूभ। सोम का खत लिये-लिये ही न जाने कब सो गयी। सुबह काफी देर गये जब मम्मी ने आवाज दी तो मेरी आंखें खुलीं। बबली कालेज चली गयी थी। मुझे आवाज देकर मम्मी भी ऑफिस चली गयी। चारपाई छोड़कर मैं नित्य-कर्म से निबटने में मशगूल हो गयी और नहा-धोकर एक-डेढ़ घंटे में सिंगार-दान के सामने पहुंच गयी। लवंग की हल्की-सी परत चेहरे पर चढ़ाकर आदमकद शीशे के सामने अपनी छवि आप निहारती रही। अतिरिक्त रूप से सज-संवरकर साढ़े नौ बजे तक ऊपर से नीचे उतरकर स्टडी में आ गयी और सोम का इंतजार करने लगी। नन्ही को दो घंटे की छुट्टी देकर उसके घर भेज दिया। चेयर पर बैठकर सोम की दी हुई किताब पढ़ने लगी, लेकिन किताब में मन नहीं लगा। उठकर खड़ी हो गयी और ऊपर चली आयी। ऊपर आते ही नजर फिर क्लॉक पर चली गयी। मैं क्लॉक को देखने लगी, क्लॉक के पेंडुलम को, पेंडुलम की गति को। दस बजने में सिर्फ दस मिनट बाकी रह गये हैं। बाहर निकलकर बरामदे में टहलने लगी। थोड़ी देर बाद उतरकर फिर स्टडी में आ गयी। टेबल पर पड़ी हुई किताबों को करीने से सजाकर अल्मारी में लगा दिया। खिड़कियों और दरवाजों के पर्दे ठीक कर दिये।

टेबल पर एक ग्लोब रखा हुआ है, ग्लोब के नीचे एक पेन और पेपर-वेट से दबा हुआ सोम का खत और उसी में लिखे मेरे कुछ शब्द। उन शब्दों को शायद सोम से कह नहीं पाती, इसलिए उनके ही पत्र पर कुछ शब्दों का अपना जवाब लिख दिया है। आकर खुद पढ़ लेंगे। बाकी पूरी की पूरी

टेबल खाली है। लम्बी-चौड़ी टेबल का श्वेत, बिल्कुल दूध-सा सनमाइका,
चिकना और खूबसूरत। उस पर गर्द की हल्की-सी परत जम गयी है। टॉवेल
से उसे पोंछ देती हूं। अभी हम दोनो इसी टेबल पर बैठकर चाय पियेंगे।
स्टडी से उठकर फिर ऊपर आ गयी, शीशे के सामने। पाती हूं कि चेहरे पर
परेशानी के भाव है। कभी दयाल, कभी सोम, कभी मम्मी और कभी पापा
मेरी आंखों मे कौंध रहे हैं। दयाल और सोम मे अब सिर्फ सोम मेरे दिमाग
मे रह गये है। दयाल तो वह हो ही नही सकता, जो मैं चाहती हूं। वह,
वह नही बन सकता, सोम बन सकते हैं। सोम मेरा वह बनना चाहते है,
जो मैं चाहती हूं। एकाएक मुझे न जाने क्या हो गया कि अल्मारी से दयाल
के सभी खत निकाल लायी और फाड़-फाड़कर रद्दी की टोकरी मे फेंक
दिये। उठकर फिर अपने चेहरे को शीशे मे देखा। परेशानी अभी भी खत्म
नहीं हुई है। कुछ टूटा है और टूटने पर शायद परेशानी होती ही है।

नजर उठी तो क्लॉक पर जम गयी, क्लॉक के पेंडुलम पर। मम्मी का
जीवन भी तो ऐसा ही पेंडुलम बन गया है। पेंडुलम की तरह चलना और
चलना। मशीन के पुर्जे की मानिंद भागना और भागना और इसी भागम-
भाग मे पापा उनसे छूट गये, पापा ही क्यो, हम सब भी तो। कितना त्रासद
हो जाता है वह दाम्पत्य, जिसका एक अंग पेंडुलम की तरह अनवरत गति-
शील हो उठता है और दूसरा अंग पत्थर की तरह जड़, इसके साथ ही जड़
हो जाते है सारे मानवीय संबंध और रिश्ते। हिमानी की तरह गल-गलकर
बह जाता है कोई जीवन। खत्म होने से पहले अधूरी रह जाती है कोई
कहानी और किसी को ढोनी पड़ती है उस अधूरी कहानी की पाडुलिपि।
मुझे लगता है कि मैं ऐसी ही एक अधूरी कहानी की पाडुलिपि को ढो
रही हूं।

टन्न···टन्न · टन्न। दस बजते है तो मेरा दिल धड़क उठता है।
बाहर निकलकर दरवाजे पर आहट लेती हूं। दरवाजा बंद है। सिटकनी
चढ़ी हुई है। दस बजने के बाद भी जब कॉलबेल नहीं बजी तो मैं अकुला
उठी। सोमजी अभी तक क्यो नही आये, सोचते हुए सीढ़ियां उतरने लगी।
मेरी नजरें दरवाजे पर टिक गयी है। कान कॉलबेल की आवाज सुनने के
लिए उतावले हो उठे है। चलती हुई स्टडी मे पहुंची। एक-एक पल मुझे

भारी लग रहा है। सोम तो टाइम के बड़े पंक्चुअल है, आज न जाने क्यों देर लगा रहे हैं। मेरा दिल धड़क उठता है। स्टडी से निकलकर बाहर आ जाती हू और सिटकनी नीचे कर दरवाजा खोल देती हू। न जाने क्या हो जाता है कि अपने एक स्टूडेंट के सामने मेरे हाथ अपने आप जुड़ जाते हैं और एक बार नजरें मिलने के बाद सिर झुक जाता है। लाख कोशिश करने पर भी फिर सिर उठा नही पाती। आगे-आगे सोम और उनके पीछे-पीछे चलकर स्टडी मे पहुच जाती हू। न मैं बैठ पाती हू और न ही सोम। दोनो के दोनों खड़े रह जाते है, सिर झुकाये हुए। सोम की निगाहें उनके अपने पत्र और उस पर लिखे मेरे शब्दो पर टिक-सी गयी हैं। वे कुछ घबराहट-सी महसूस कर रहे हैं। मेरे तन-प्राण भी कपन, सिहरन और रोमाच की स्थिति मे है। मैंने बैठने को कहा तो वे बोले, 'नही मैडम, कल की भूल पर मैं शर्मिन्दा हू। यहा से जाने के बाद मैंने देखा कि गाव से पिताजी आये हैं। वे अपने ही रिश्ते की मेरी सुपरिचित एक लड़की के बाप को वचन दे चुके है। आय एम सॉरी फार दैट। मैं आपके पापा की भूल को दोहराना नही चाहता।' सोम एक ही सास मे सारी बातें कह गये। उनकी बातें सुनकर मेरे सामने अधेरे की पर्ते छा गयी और मैं किसी भयानक स्वप्न की तद्रा मे जकड़-सी गयी। कुछ ही पल बाद जब तद्रा टूटी तो सोम जा चुके थे और मैं···

1974

सेंटीमेंटल

मम्मी ने पांच बजे का अलार्म लगाया था, लेकिन मेरी आंखें चार बजे ही खुल गयी। यो मैं छह से पहले कभी नही उठती। सुमी अपनी चारपाई पर सोयी है। मम्मी के कमरे से कोई आहट नही और सामने बरामदे मे पापा भी सो रहे हैं, लेकिन मेरी आखो की नीद गायब है। समझ मे नही आ रहा कि क्या करू। कुछ नही सूझा तो चादर हटाकर तन से परे कर दी। उठकर स्विच को ऑन किया तो दूधिया रोशनी कमरे में पसर गयी। सुमी की पलकों ने हरकत की तो लगा कि जाग जायेगी, पर करवट बदलकर वह निस्पंद हो गयी। दबे पांव मैं अपनी अलमारी के पास पहुंची। राजे का पत्र निकाला, चारपाई पर आयी और तकिये पर सिर टिकाकर पढ़ने लगी।

'सपनीले यान के डूबते मस्तूल व्यक्ति की आस्था और विश्वास को भी ले डूबते हैं। कल्पना की उन्मुक्त उड़ान अविश्वास और अनास्था के बीच लटककर दम तोड़ने लगती है। कुंठा के कोहरे मे व्यक्ति का व्यक्तित्व खो जाता है और वह अव्यक्ति का प्रतीक बनकर खामोश घाटियों मे दफन हो जाता है।'

मधुजी, अपनी डायरी मे इन पंक्तियों को मैंने उस दिन लिखा था, जिस दिन मुझे उसका आखिरी पत्र मिला। पत्र पाकर मैं अकुला उठा था।

तब मुझे वे शब्द याद आये थे, जो कानपुर सेंट्रल से गाडी छूटने के पहले उसके डैडी ने कहे थे, 'राजे, बिट्टी की शादी की सूचना दूगा, तब आना। आमि तोमार अपेक्षा करबो।' शब्द सुनकर मैंने हामी भरी थी, पर उसका चेहरा लाल हो गया था।

वह कौन थी, उसका डैडी कौन था, उससे मेरे क्या सबध थे—ये ऐसे प्रश्न है, जिनके उत्तर की अपेक्षा आपको मुझसे जरूर होगी।

कुरेशी साहब। एम० एस० इण्टर कॉलेज के प्रिंसिपल। शकीला उनकी लडकी और मेरी क्लासफेलो थी। इंटर मे हम दोनो साथ-साथ पढ़े थे और फिर एक गाथा, महागाथा। एक नयी दुनिया के निर्माण की योजना, इस ससार से अलग एक धर्मनिरपेक्ष ससार की सुनहरी कल्पना। अपने घर-परिवार से बेखबर हम दोनो योजनाएं बनाते, स्वप्न-दिवास्वप्न देखते। हमारे विचार समान थे। हमारे चिंतन का धरातल समान था। हमारी मित्रता गाढी होती गयी। हमे एक-दूसरे की सांसो के सरगम सुनाई पड़ने लगे और यह सब कागजों पर होता, क्योकि हमें एकात बहुत कम मिलता था। हम दोनो कहते कि हमारी बाते, सिर्फ बाते नही हैं, ठोस निर्णय है। हम हिंदू-मुसलमान की झूठी दीवार ढहा देंगे। जब कभी हम कई दिनो बाद मिलते तो बातचीत शकीला की मातृभाषा मे होती।

'केमन आछेन ?' वह पूछती।

'भालो आछि।' मैं कहता।

जब कभी मैं शकीला के घर पहुच जाता तो स्टडी मे उसकी मां आ जाती, छोटा भाई और बहन भी। तब तक कॉलेज मे लोग मुझे कवि के रूप मे जानने लगे थे। शकीला की बहन मेरे स्वर की प्रशसा करती।

'तोमार स्वरटा बेश भालो आछे।' थोडा रुककर वह फिर कहती।

'एक ठो गान गान ना।'

'आमि गाइते जानि ना।' मैं बचने की चेष्टा करता।

'एक बार चेष्टा कोर देखून।' वह पीछे पड़ जाती और शकीला भी कहती, 'यस प्लीज, एक बार।'

और फिर मैं धीमी आवाज में गा पडता—'इंतजार हम करेंगे मौत की कगार तक, कयामतें जो ढा गयी जिंदगी के राग को, तो इंतजार हम

करेंगे आखिरी बयार तक'। गीत खत्म होने पर शकीला की आँखें भर आतीं। और फिर अपने डैडी के रिटायरमेंट के साथ वह कलकत्ता चली गयी। जाते समय मैंने उसे एक पर्ची दी थी, 'मुझे एम० ए० कर लेने दो, पी-एच० डी० वगैरह बाद मे करता रहूंगा। कोई सर्विस मिलते ही मैं तुम्हें बुला लूंगा।' आखों मे आसू भरकर चुपके से शकीला ने कहा था, 'आमि तोमार अपेक्षा करबो।'

एम० ए० फाइनल की परीक्षा देने के बाद मैंने सोचा था कि जल्दी ही शकीला को बुलाकर शादी कर लूगा। तभी उसका वह पत्र आया, जिसने मेरी आस्था और विश्वास की धज्जियां उड़ा दीं। शकीला ने अपने पत्र में लिखा था, 'प्रिय राजे, अभी हमारा समाज इतना एडवांस नहीं हो पाया है कि हम अपनी योजनाओं को कार्यान्वित कर सकें। साहस किसी सीमा तक साहस रहता है और सीमा से आगे दुस्साहस बन जाता है, जो न तो स्वयं के लिए और न ही समाज के लिए अच्छा होता है।'''

'''समाज-परिवार से कटकर हम फ्रस्ट्रेशन के घेरे मे कैद हो जायेंगे। सारी योजनाएं और विचार धूल की तरह सामाजिक आलोचना और तिरस्कार की आधी मे उड़कर न जाने कहां गायब हो चुके होंगे। इस तरह धर्म के बंधन तोड़कर विवाह करनेवाले हम जैसे सामान्य लोगों का इतिहास सामाजिक प्रताड़ना, घुटन और कुंठा का इतिहास रहा है। यही सब सोच-कर मैंने निर्णय लिया है कि अब हम शादी नहीं करेंगे। मित्र हैं, मित्र ही रहेंगे। अपने विचारों को जिंदा रखेंगे और बच्चों को छूट देंगे कि वे धर्म के बंधन तोड़कर शादी कर सकें। तुम्हारे लिए भी मेरा यही सुझाव है कि अपने योग्य किसी सजातीय लड़की से शादी कर लो। अगली बीस जून को मेरी शादी है, आना जरूर। आमि तोमार अपेक्षा करबो।'

मैंने शकीला को कोई जवाब नहीं दिया और न ही उसकी शादी मे कलकत्ता गया। काफी दिनों तक एक अजीब-सी बेचैनी का शिकार रहा। सपनीले यान के मस्तूल डूब गये और निरुपाय-असहाय-सा मैं देखता रह गया। मेरी सारी चंचलता लुप्त हो गयी और मैं अंतर्मुखी हो चला।

मधुजी, फिर एक सपना और आया। आपका सपना, यानी अपनी टीचर का। मैंने आपके चेहरे पर शकीला की तलाश की। घर लौटकर मैंने

शकीला के पत्र को इत्मीनान से फिर कई बार पढ़ा तो शब्दो के अर्थ बदलने लगे। शकीला के पत्र की आवाज मुझे सही लगने लगी। तब मैंने आपको परखना शुरू किया और पाया कि आप मेरी जीवन-संगिनी हो सकती हैं। एम० ए० मे फर्स्ट क्लास पाकर मेरा सोया आत्मविश्वास जाग उठा है। आपकी और मेरी उम्र का फासला मेरे-जैसे लेखक के लिए कोई खास मायने नही रखता। मोपासा, लारेंस, प्रूस्त और बालजक आदि ने अपने से अधिक उम्रवाली औरतो से प्यार किया, शादियां की और वे उनके उत्कर्ष मे सहायक हुई। एक जगह मैंने डायरी मे लिखा है, 'लगता है कि जल के बीच रहकर भी प्यासा मरना मेरी नियति है। जब से मैं पैदा हुआ, प्यास से तड़प ही तो रहा हू'''मां की ममता की, बाप के प्यार की, बहन के स्नेह और प्रेयसी के प्यार की प्यास, प्यास और प्यास, एक अंतहीन प्यास। जल के बीच रहकर प्यासा मरने की कहानी। कितने भयकर है वे एहसास, जब प्यास से तड़पते हुए आदमी के सामने पानी से भरे हुए गिलास तो रखे हों, किंतु राइफल ताने एक गोरखा चेतावनी दे रहा हो कि तुम इस पानी को देख तो सकते हो, पी नही सकते। समय-समय पर गोरखो के चेहरे बदलते गये और पानी के गिलास भी। कभी-कभी गोरखों की आखे लग गयी तो सहमते-सहमते मैंने गिलासो को उठाया, लेकिन गोरखो के जग जाने के भय से कापकर उन्हें ज्यो का त्यो रख दिया है। हर गिलास ने चुपके से कहा है कि मैं और मेरा पानी तुम्हारा है, सिर्फ तुम्हारा, तुम्हारे पीने के लिए, लेकिन वक्त का इतजार करो; मैं वक्त का इतजार करता रहा, लेकिन वक्त कभी नही आया। कई बार चाहा, गिलास गोरखों से विद्रोह कर दें, पर शायद गिलासों को अपनी-अपनी औकात का पता था और किसी गिलास ने कभी किसी गोरखे से विद्रोह नही किया। मैं तनहा होता गया। मेरे इंतजार की कीमत भारी होती रही। नये-नये गिलासो के साथ नये-नये रूपो मे राइफल लिये ये गोरखे हर जगह तैनात रहे है। हर जगह राइफल की नाल और गोरखों की लाल-लाल आखो का रुख मेरी तरफ ही रहा है। अपनी जिंदगी के बहुत सारे वर्ष मैंने भय और प्यास के दमघोट वातावरण मे छटपटाते हुए गुजारे है।'

मधुजी, मन करने लगा है कि कही एकात में आपसे मिलू। ढेर सारी

बातें करू। आपको बार-बार देखने के लिए मन छटपटाने लगा है, बेचैनी बढने लगी है। आपके सामने होने पर नमस्ते के सिवा और कुछ कहने की हिम्मत नही पडती और बिना बताये आपको क्या पता कि मेरे मन मे क्या है। आशकाओ के सैलाव उमडते है और मै उनमे डूब जाता हू। आप कल्पना नही कर सकती कि मैने आपके लिए कितने पत्र लिखे, पर न जाने क्यो, एक भी पत्र आपके हाथो तक नही पहुचा सका। आज रात एक स्वप्न देखा, तभी अपना सपूर्ण साहस जुटाकर यह पत्र आप तक पहुचा पा रहा हू।

'स्वप्न, स्वप्न यानी ड्रीम और मुझे विज के चद शब्द याद आ रहे हैं—आल दी फैक्ट्स, एज वी सी देम, अर्ज अस टु करेक्टराइज, दी ड्रीम इज ए फिजिकल प्रॉसेस, इन आल केसेज यूजलेस एड इन मेनी केसेज डिफनिटली मारबिड, लेकिन फायड बीच मे अपनी टाग अडा देता है·· आल ड्रीम्स आर विशफुलफिलमेंट। स्वप्न मे मैने देखा···पार्क का मखमली घास बिछा फर्श। अपने सपूर्ण सौदर्य के साथ मेरे सपनो की मल्लिका चिडियो की क्रीडा देख रही है। मै चुपके से जाकर उसके पास खडा हो गया। उसने मुझे देखा और मुस्कराकर बैठ गयी। मैने उसका अनुसरण किया और फिर हम दोनो मौन हो गये। शब्द होठो तक आते और भाप बनकर उड़ जाते। कोई किसी से कुछ कह नही पा रहा है। एकाएक मेरी खामोशी का बाध टूटता है और मै बोल पडता हू, 'मधु, इतने दिनो बाद भी क्या तुम मेरे मौन प्यार को न पहचान सकी ?'

'आय एम सॉरी राजे, आय एम सॉरी।'

'ह्वाय ?'

'आय एम सॉरी राजे, क्षमा करना, क्षमा करना।' कहती हुई मधु तेज कदमो से पार्क के बाहर निकलने लगी तो ह्वाट-ह्वाट करते हुए मै कुछ कदम उसके साथ चला गया और लगभग चीखते हुए बोला, 'मधु, अब मैं किसी तीसरी को नही चाह सकता। एक दिन तुमने ही कहा था कि मैं बहुत बडा लेखक बनूगा, लेकिन मुझे तुम्हारा प्यार नही मिला तो मैं कुछ नही बन पाऊगा, घुट-घुटकर मर जाऊगा।'

मेरी नींद टूटी तो मैं पसीने से तर था। तब से काफी बेचैन हू।

उस

सोचता हू कि क्या मचमुच तुम इन्कार कर दोगी ? कल दस वजे फूलबाग में लोहिया की स्टेच्यू के पास मैं तुम्हारा इतजार करुगा। आमि तोमार अपेक्षा करबो।'

जब से राजे ने मुझे यह पत्र दिया है, मैं बहुत उलझन में हू। रात काफी देर से सोयी और चार वजे ही आखे खुल गयी। मैं राजे को चाहती जरूर हूं, पर जिस रूप में उसने मुझे चाहा है, उस रूप में नही। टीचर और स्टूडेंट के रूप मे हमारी घनिष्ठता बढ़ जरूर गयी थी, लेकिन राजे ऐसा भी प्रस्ताव रख देगा, मैंने कभी सोचा तक नही था। कम से कम राजे के साथ शादी की बात कभी मेरे दिमाग मे नही आयी। नहीं समझ पा रही कि राजे को क्या जवाब दू। कोई ऐरा-गैरा होता तो यों ही छोड़ देती, पर राजे को यों ही छोडते नही बनता। अलार्म घनघना उठी तो मैंने चारपाई छोड़ दी और चेयर पर बैठ गयी।

पापा ने मेरी शादी सैटिल कर दी है। पापा की ही च्वॉइस हैं वह। चार दिन पहले ही तो लदन से लौटे हैं। मैंने अभी उन्हे नही देखा। पता नही, कैसा रग-रूप है, व्यवहार कैसा है। उनके बारे में मुझे कोई अंदाज नही है। मेरे बारे मे भी वे सर्वथा अनभिज्ञ है। मम्मी बता रही थी कि परिवार सम्पन्न है। शादी के बाद चाहू तो नौकरी करूं और चाहूं तो रानी बनकर घर मे राज करू। जल्दी ही किमी दिन वे आयेंगे। हम एक-दूसरे को पसंद करेंगे और फिर शादी। वे अपनी प्रैक्टिस करेंगे और मैं···सोचकर ही मन प्रसन्नता से झूम उठता है, पर राजे के पत्र ने मुझे उलझन मे डाल दिया है। अपने क्वांरे अतीत को पूरी तरह रौंदकर मैं भविष्य के सुनहरे स्वप्न सजा रही हू। एक तरफ फॉरेन-रिटर्न व्यक्ति से शादी की खुशी है और दूसरी तरफ राजे का यह मौन प्यार और उससे भी बढकर है उसकी जिंदगी। जगने पर मैंने सुमी को फूलबाग पहुचने के लिए राजी कर लिया और पेन उठाकर लिखने लगी, 'राजे, तुमने मुझे बड़ी उलझन मे डाल दिया है। तुम्हारे इस प्रपोजल को अचानक कैसे स्वीकार कर लू। पापा ने उनके साथ मेरी शादी सैटिल कर दी है, उन्हें किस बिनाह पर मना कर दू। कितना कठोर होता है जिंदगी का वह क्षण, जब दो महत्वपूर्ण प्रपोजल्स मे से किसी एक का चुनाव करना हो, पर चुनाव तो करना ही पड़ता है।

तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे लगा है कि तुम कहीं ज्यादा ही भावुक हो। बचपन से ही प्यार के अभाव में तुम कल्पनाजीवी हो गये हो। आज की दुनिया में भावुकता के लिए कोई जगह नहीं है। अब तुम अल्हड़ किशोर नहीं, समझदार युवक हो। मेरी शादी सैटिल हो चुकी है और मेरा खयाल तुम हमेशा-हमेशा के लिए अपने दिमाग से निकाल दो। पहले अच्छी-सी नौकरी तलाश करो, तब शादी की बात सोचना, क्योंकि तुम्हारी रचनाएं राशन नहीं देंगी, मकान का किराया पेमेंट नहीं करेंगी। कपड़ों-लत्तों से लेकर मामूली से जीवन-स्तर तक के लिए तुम परेशान हो जाओगे। आज-कल एम० ए० हो जाने मात्र से नौकरी नहीं मिल जाती। नौकरी मिल जाये, तभी किसी से शादी की बात सोचना। तब कोई भी सबीला, मधु या सुमी तुम पर अपना निर्णय नहीं थोप पायेगी, अन्यथा इसी तरह से गिलास बदलते रहेंगे और तुम प्यास से तड़पते रहोगे। और अब भी अगर मुझसे मिलने की बेचैनी हो तो शाम को घर आना, तब और बातें होंगी।'

1973

उम

अभिलाषा

सीतासरन बाबू अपने क्वार्टर के सामने आये और साइकिल बरामदे में खड़ी कर दी। जेब से चाबी का गुच्छा निकाला, रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और कमरे का ताला खोलकर किवाड़ ठेल दिये। तकरीबन एक हफ्ते बाद सीतासरन बाबू गांव से वापस लौटे थे। किवाड़ खुलते ही उनकी नजर डाक पर पड़ी, जो इतने दिनों में इकट्ठी हो गयी थी। सीतासरन बाबू सब कुछ सामान्य रूप से देख गये, पर एक अंतर्देशीय पत्र ने उन्हें अपनी गिरफ्त में ले लिया। उन्होंने उसे कई बार पढ़ा। पत्र के एक-एक शब्द ने उन्हें एक अजीब-सी अनुभूति से भर दिया। पत्र पढ़कर सीतासरन बाबू के सामने सत्रह-अठारह साल के एक किशोर की तस्वीर उभर आयी—सस्ते किस्म के कपड़े पहने था वह। हाफ पैंट और बुशर्ट। सिर पर छोटे-छोटे बाल और पैरों में सस्ते-से चप्पल। सांवले रंग और देखने में भली छविवाले उस लड़के के चेहरे पर एक अजीब तरह का भाव था। कुछ दिन पहले सीतासरन बाबू से उसकी मुलाकात हुई थी।

गांव से कानपुर आ रहे थे सीतासरन बाबू। घर से कुछ लेट हो गये तो काफी भागदौड़ के बाद गाड़ी मिली। गाड़ी में ज्यादा भीड़ न थी। छक्-छक् करती गाड़ी ईस्टर्न केबिन को क्रॉस कर रही थी। काला-सा झोला

लिये वह करीब आया और सीतासरन बाबू के गंदे जूतों की तरफ इशारा करते हुए बोला, 'बाबूजी, पालिश !'

सीतासरन बाबू ने पहले तो उसे घूरा, अपने जूतों को देखकर कुछ सोचा और फिर पूछ लिया।

'कय पइसा ल्याहव ?'

'तीस बाबूजी।'

'पच्चीस लेव यार।'

'अरे बाबूजी...'

उसकी मुद्रा देखकर सीतासरन बाबू ने जूते उतारकर उसकी ओर बढ़ा दिये। सामनेवाली सीट पर बैठकर वह ब्रश से जूतों पर जमी गर्द झाड़ने लगा। थोड़ी देर तक तो वे उसे काम करते हुए देखते रहे, लेकिन फिर उनसे रहा नहीं गया तो पूछ बैठे, 'कहा के रहैं वाले हौ ?'

'गौरंगपुरवा के।'

'इयो कहा है ?'

'बिठूर के पास।'

'महतारी-बाप का करत हैं ?'

'उइ अब जिंदा नाइ हैं ?'

'भाई-बहिनी ?'

'याकव नाइ।'

'कउनौं नाते-रिश्तेदार ?'

'है तौ, लेकिन .....' कहते-कहते उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएं खिंच गयीं। बातों को आगे बढ़ाने की गरज से सीतासरन बाबू ने उसे फिर कुरेदा, 'है तौ लेकिन...'

'जाय देव बाबूजी।'

'नाही यार।'

'बाबूजी, पहिले हम अपनी बातैं सबका खुदय बतावन लागत रहन, लेकिन कउनौं ध्यान नाइ देत रहय। वोही के मारे अब हम कोहू ते कुछ नाइ कहत हन।'

'लेकिन हम तुम्हरी बातैं सुनो चहत हन।'

सीतासरन बाबू के आग्रह पर उसने बताया कि गोरगपुरवा में एक कोठरी और छप्पर भर का उसका छोटा-सा घर था। उनके मां-बाप के पास जमीन नहीं थी। मेहनत-मजूरी करके किसी तरह से अपना पेट पालते थे। जब वह सिर्फ तीन वर्ष का था, बाप को कालरा हो गया और वह चल बसा। तब अकेले ही उसकी मां ने उसका पालन-पोषण किया और बड़ा होने पर स्कूल भेजा। पढ़ने में वह पहले से ही तेज था। अध्यापक आकर मां से उसकी तारीफ करते तो वह हुलस-हुलस जाती।

तब वह आठवें में पढ़ता था। कड़ाके की सर्दी में एक दिन मां मजूरी पर गयी और उसे ठंड लग गयी। दवा-दारू ढंग से हो नहीं सकी और चार दिन बाद उसकी मां भी चल बसी। अपनी पढ़ाई पूरी करने की गरज से मां का शेष सामान और रुपया-पैसा लेकर वह अपनी बुआ के पास राजपुर चला आया। चला क्या आया, बुआ-फूफा खुद ले आये। वहां आकर उसे लगा कि वह उनके लिए बोझ है। उसकी पढ़ाई-लिखाई चौपट हो गयी। उसके ऊपर दिन-रात काम पड़ने लगा। खाना भी ऐसा-वैसा ही मिलता, ऊपर से बुआ की खरी-खोटी बातें सुननी पड़ती। काम से वह कभी नहीं घबराया, लेकिन रोज-रोज के ताने बर्दाश्त नहीं कर सका और एक रात वहां से भागकर कानपुर आ गया।

उसके पास कुछ रुपये थे। कानपुर सेंट्रल पहुंचकर उसने एक पॉलिश वाले को देखा तो उसने भी कुछ ब्रश तथा पॉलिश की डिब्बियां खरीद लीं और बन गया पॉलिशवाला। तब से यह धंधा कर रहा है। आठ से पंद्रह रुपये तक रोज कमा लेता है।

अपनी बात कहकर वह चुप हो गया तो सीतासरन बाबू को लगा कि यह लड़का तो काम का हो सकता है, इसे नहीं छोड़ना चाहिए। उन्हें एक लड़के की जरूरत भी थी। खाना-कपड़ा और तीस-चालीस रुपये महीना दे देना उन्हें महंगा नहीं पड़ेगा। साग-सब्जी लाने से लेकर कपड़े-लत्ते धोने तक का काम इससे लिया जा सकता है। सीतासरन बाबू ने अपनी अक्ल के घोड़े दौड़ाये, 'अपनि पढाई पूरी करिहो ?'

'ऐंऽऽ…' वह चौंक-सा गया और सीतासरन बाबू को गौर से देखने लगा। उन्होंने उसे आश्वस्त करना चाहा, 'हां-हां, हम ठीकै तो कहत हन।'

'लेकिन'...'

'लेकिन का, हम एक स्कूल मा हन। तुम्हारि फीस माफ करवा देबे। लाइब्रेरी से किताबैं अउर पी० वी० फट से कुछ पैसव देवा देबे। हमरे घर मा रहेव अउर होई खयेव-पियेव। घर के छुटाट-म्वाट काम करत रहेव, बस्सि।' सीतासरन बाबू की बातें सुनकर वह सोचने लगा और फिर बोला, 'आप हमैं अपन पता दइ देव, दुइ-चारि दिन मा सोचि-समझि कय बतइबे। होइ सकत हय कि हम चले आवन, नाही तव चिट्ठी लिखिबे।' कहकर पॉलिश हो चुके जूते उसने सीतासरन बाबू की ओर बढ़ा दिये। रावतपुर स्टेशन पर सीतासरन बाबू उतरे तो गेट से बाहर होने तक वह उन्हें देखता रहा था।

उसके बाद कई दिन तक सीतासरन बाबू इंतजार करते रहे, पर वह नहीं आया। सीतासरन बाबू को आज उसी लड़के का पत्र मिला है, जिसमें उसने अपनी स्थिति स्पष्ट की है।

'बाबूजी, आपका स्नेह पाकर आगे पढ़ने की मेरी सोयी इच्छा जाग उठी थी। आप तो उतरकर चले गये, पर मैं सोचता रह गया था। रोजगार दफ्तर के सामने जब मैंने पढ़े-लिखे लोगों की भीड़ देखी तो मेरी आत्मा कांपकर रह गयी। जिंदगी और भविष्य को लेकर मेरे सामने तमाम सवाल उभर आये थे, जिनका जवाब अभी तक नहीं सोच पाया हूं।

मुझे लगता है कि पढ़ाई अब मुझे ले जाकर उस चौराहे पर खड़ा कर देगी, जहां से निराशा और अंधकार का सिलसिला शुरू होता है। मेरे-जैसे लोगों के पढ़ने-लिखने की कोई सार्थकता भी रह गयी है क्या?

डाकघर में मैंने कुछ रुपये जमा किये हैं। बचा-बचाकर और भी जमा करता रहूंगा। दो-तीन साल बाद जब काफी रुपया इकट्ठा हो जायेगा तो एक ठेलिया दुकान कर लूंगा—पान-बीड़ी, सिगरेट, बिस्कुट, ब्रेड, अंडे, चाय और समोसे वग़ैरह की। और फिर धीरे-धीरे इतना रुपया इकट्ठा कर लूंगा कि वहीं पर होटल खोलकर चैन की जिंदगी जी सकूं। आशा है, आप मेरी स्थिति को समझेंगे और क्षमा कर देंगे।'

1973

मादरेवतन

राखी, बहुत दिन बाद तुम्हे लिख रहा हूं। पता नही, यह खत तुम तक पहुंच भी पायेगा या रास्ते मे ही कही खो जायेगा। कहने को तो यह एक खत है, किंतु मैं इस शिविर जीवन की व्यथा कथा लिख रहा हू। यू तुम्हे खत लिखने का कोई कारण नही है। रास्ते मे हुई मुलाकाती पहचान से हमारा एक रिश्ता जुड़ गया था, इसानी रिश्ता, लेकिन यहां रहते-रहते अब लगने लगा है कि रिश्ते इसानी नही होते, वे स्वार्थ के होते है, यान्त्रिक और कृत्रिम।

मेरे साथ मेरे इलाके मे आकर देश-दर्शन की अपनी अभिलाषा पूर्ण कर तुम चले गये। मुझे दे गये थे निमत्रण अपने यहां आने का, लेकिन मेरी अभिलाषा, अभिलाषा ही रह गयी। मैं न कानपुर देख सका, न लखनऊ या वाराणसी। दिल्ली, बबई, कलकत्ता, चडीगढ़, मद्रास, सब शहर सपनो के शहर बनकर रह गये। स्थितिया पूर्ववत रहती तो संभव था कि मेरी अभिलाषा पूरी हो जाती, किंतु अब स्थिति मे परिवर्तन हो गया है, आमूल-चूल परिवर्तन। कल तक मैं भारतीय था और आज? मेरे आज के सामने एक प्रश्नचिह्न लग गया है और कल के सामने भी। हा, आने वाले कल के सामने भी। आज हम न भारतीय हैं, न पाकिस्तानी। हम शरणार्थी बन-

कर रह गये है। और शरणार्थी की कोई नागरिकता नही होती। होती है तो सिर्फ एक सस्कृति, जख्मी संस्कृति, जिसके जख्मो पर मरहम-पट्टी की व्यवस्था भी प्राय. नही होती।

दुनिया के तमाम इलाको मे शरणार्थी बसे हुए है। उन्ही इलाको मे से एक मेरा इलाका छम्ब भी है। पिछले युद्ध मे पाकिस्तान द्वारा हमारा इलाका हड़पे जाने से हम शरणार्थी हो गये। तब से अब तक कई समझौते हुए, आश्वासन मिले, पर परिणाम के नाम पर हमारे सामने प्रश्नचिह्न ही लटका हुआ है, किसी त्रास की तरह।

क्षणिक त्रास अच्छा होता है, किंतु यह त्रास नही। त्रास मे आदमी इस पार या उस पार हो तो जाता है, किंतु यह त्रास, यह अनिश्चितकालीन त्रास भयानक है, बहुत भयानक। हम त्रिशंकु की तरह बीच मे लटका दिये गये है, न उधर जा सकते है, न इधर रह सकते है।

दुनिया के सबसे बड़े प्रजातंत्र मे हम अठारह हजार शरणार्थियो की गभीर से गभीरतर होती जा रही समस्या की तरफ किसी का भी ध्यान नही जा रहा। हमे आज भी नही पता कि हम भारतीय होगे या पाकिस्तानी! यह अनिश्चितता बहुत त्रासदायी है। हमारे लिए भोजन, वस्त्र, निवास तक की समुचित व्यवस्था नही। तबू और तिरपाल हैं, किंतु कभी के फट चुके। किसी तरह पानी मे भीगभागकर बरसात तो गुजार दी, किंतु खून जमा देने वाली सर्दी मे क्या होगा, भगवान ही मालिक हैं।

कैंपो मे चारो तरफ गंदगी ही गदगी है। पीने के पानी तक की समुचित व्यवस्था नही। बच्चो की शिक्षा की हालत और भी बदतर है। यहां पर हम किस तरह नारकीय जीवन बिता रहे हैं, शब्दो मे व्यक्त कर पाना सभव नही है। जाड़े के बाद गर्मी और फिर बरसात आयेगी और हम तिहत्तर की सर्दियो का इंतजार करेंगे।

मेरी बूढ़ी मा पुराने चिथड़ो में लिपटी हुई दूर, बहुत दूर, क्षितिज तक न जाने किसे निहारा करती है। शायद उसे भैया और भाभी का इतजार है। मुझे विश्वास है कि अब वे वापस नही लौटेंगे। जिंदा होते तो अब तक लौट आते। आक्रमण मे हम तितर-बितर हो गये थे। भाई साहब न जाने कहा गायब हो गये। मा की बूढ़ी आखों के सामने भाभी को दरिंदो ने पकड़

वह लंगड़ा था

'हाय !' औरत ने देखा तो उसकी आखें खुली की खुली रह गयी। हृदय की धड़कन तेज हो गयी। हतप्रभ-सी खड़ी वह नरकंकाल को देखे जा रही थी।

'यह कंकाल किसका है। इसे यहां पर किसने छिपाया है ?' औरत लगभग चीखते हुए स्वर मे चिल्लायी। काम करनेवालो की नजरे कभी उस कंकाल पर ठहर जाती और कभी गृहस्वामिनी पर।

'इस औरत का आदमी एक दिन अचानक गायब हो गया था।' एक नौकर फुसफुसाया। एक से दो और दो से चार और फिर यह खबर सारे गांव मे बिजली की तरह फैल गयी। पुलिस को खबर लगते देर नही लगी। कुछ ही देर मे पुलिस की जीप आ धमकी। अब पुलिस अधिकारी और वह औरत आमने-सामने थे।

'यह कंकाल तुम्हे कहा से मिला ?'

'मैं अपने मकान की मरम्मत करवा रही थी। मजदूरो के द्वारा लकड़ी के तख्ते हटाये जाने पर यह कंकाल निकल पड़ा।'

'तुम विधवा हो ?'

'जी हां।'

पुलिस को फिर संदेह हुआ कि इवान लुकोश्किन जिंदा हो सकता है। और अगर जिंदा है तो फिर है कहां? अब इवान की खोज शुरू हुई। पूछ-ताछ से यह भी पता चला कि इवान ने एक छोटी-सी दूकान को लूटा था। खोज करते-करते आखिर उस गाव से पाच सौ मील की दूरी पर इवान को एक दिन खोज ही लिया गया।

ओयाशास्की, इवान का छोटा-सा गाव। उसे अपने गाव की बेहद याद आती, मगर वहां से यहां वह सुरक्षित था, सुखी और प्रसन्न भी। पत्नी की याद आती तो उसका मन बेचैन हो उठता। आखिर अपनी पत्नी से मिलने को वह तैयार हो गया। ढेर सारा सामान इकट्ठा किया और चलने की तैयारी करने लगा, पर शायद पत्नी से इस प्रकार मिलना उसके नसीब मे नही था।

जिसदिन वह जाने वाला था, उसी दिन सवेरे उसके दरवाजे पर दस्तक हुई। इवान ने किवाड खोले और सामने जो था, उसे देखते ही कांप गया। उसने स्वप्न मे भी नही सोचता था कि एक दिन पुलिस इस प्रकार उसके सामने आकर खड़ी हो जायेगी। पुलिस अधिकारी ने सोचने का ज्यादा अवसर नही दिया और इवान को गिरफ्तार कर लिया गया।

प्रोफेसर जेरासिमोव की रिपोर्ट जब इवान के हुलिया से नही मिली तो पुलिस ने गुमशुदा लोगो की लिस्ट देखी। 1953 मे इवान गायब हुआ था और 1953 मे ही अपानासेको नाम का एक रेल कर्मचारी भी लापता हुआ था। उसकी हुलिया जेरासिमोव की रिपोर्ट से मेल खाती थी। जेरासिमोव की रिपोर्ट तथा पुलिस की खोज के आधार पर पुलिस अधिकारी ने इवान से पूछना शुरू किया।

'तुम्हारा नाम इवान लुकोश्किन है?'

'जी···'

'तुम ओयाशास्की के निवासी हो?'

'जी···'

'तुम 1953 मे अपने गांव से लापता हुए थे?'

'जी···'

'तुमने दूकान लूटी थी ?'

'...............'

पुलिस अधिकारी को हतप्रभ नजरों से देख रहा था इवान। उसका शरीर कांप रहा था। तब पुलिस अधिकारी ने अपेक्षाकृत तेज आवाज में इवान से पूछा।

'तुमने दूकान लूटी थी ?'

'जी···मुझे नहीं मालूम।'

'इस कंकाल के बारे में तुम क्या जानते हो ?'

'मुझे कुछ नहीं मालूम।'

'उस घनी भौंहोंवाले आदमी का क्या हुआ ?'

'कौन आदमी ?' इवान चौंका।

'जिसकी आखें धंसी हुई थी।'

'मुझे क्या पता ?'

'जिसके गाल की हड्डियां उभरी और ठुड्डी भारी थी।'

'जी···' इवान का चेहरा फक्क पड गया। उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगी। पेशानी पर पसीने की बूंदें छलक आयी। तब पुलिस अधिकारी इवान के और करीब खिसक आया। उसके पीले पड़ गये चेहरे में धंसी आखों मे आखें डालते हुए पुलिस अधिकारी ने अपना अंतिम सवाल दागा।

'वही, जो दायें पैर से लगड़ा था।'

'बस, बस, ठहरो, मैं सब कुछ बताता हू।' इवान ने कहा और बताने लगा, 'उस लगड़े को लूटकर मैंने जान से मार दिया और अपने मकान में फर्श के नीचे दबाकर वहा से चुपचाप भाग आया था। जिस समय मैंने उसे मारा, वह रेलवे की वर्दी मे था, बाकी वह कौन था, यह मैं आज भी नहीं जानता।

1972

नया ज्योतिषी

'यह शादी नही हो सकती।'

'लेकिन क्यों ?'

'कह दिया न, यह शादी नही हो सकती !'

तेज आवाज मे पिता ने कहा। पिता की आवाज सुनते ही सोमी आशका के सैलाब मे डूब गया। अपने प्यार पर तुषारापात होते देख सोमी सहम गया। उसकी हिम्मत नही हो रही थी कि पिता से एक बार फिर पूछे कि आखिर सलोमी मे ऐसी कौन-सी कमी है कि उसके साथ मेरी शादी नही हो सकती। लबा छरहरा बदन, बड़ी-बड़ी आंखें, गोरा रग, कसा हुआ बदन, आकर्षक व्यक्तित्व, ऊंची शिक्षा और बड़ी तनख्वाहवाली नौकरी। ढूढने पर भी सोमी को सलोमी मे ऐसी कोई कमी नजर नही आ रही थी कि उससे उसकी शादी न हो सके।

वह उसे बहुत दिनों से जानता है। उसे बहुत करीब से देखा है। उसकी आदतो, सिद्धातो और विचारो को अच्छी तरह से जाचा-परखा है। वह भी उसे बहुत चाहती है। उन दोनों का प्यार सेक्स की क्षणिक भूख नही है। उनका प्यार हृदय की गहराइयो से निकलकर जवान हुआ है और आज अचानक सोमी के पिता ने एकदम से नादिरशाह की तरह फरमान जारी

मरघान (कविता मग्रह

कर दिया कि सलोमी के साथ उसकी शादी नही हो सकती। आखिर क्यो नही हो सकती सलोमी के साथ उसकी शादी। बहुत हिम्मत कर सोमी ने आखिर अपने पिता से पूछ ही लिया, 'कोई कारण तो होना चाहिए। सिर्फ आपकी इच्छा से तो दुनिया नही चल सकती न।'

'बडो से बहुत बहस नही किया करते बेटे, आखिर मैं तुम्हारा पिता हूं, कोई दुश्मन नही।'

'पिता हो जाने मात्र से आपको यह हक हासिल नही हो जाता कि दो दिलों की हरी-भरी दुनिया मे आग लगा दो। आपको हमारी शादी रुकवाने से क्या हासिल हो जायेगा ?'

'तुम्हारी खुशियां !'

'बहुत खूब, बेटे की दुनिया बरबाद कर बेटे को खुशियां हासिल करना चाहते है। कितना बडा मजाक कर रहे हैं आप हमारे साथ !'

'नही बेटे, यह मजाक नही है।'

'तो फिर क्या है यह ?'

'एक सच।'

'सच, कैसा सच ?'

'सच, जो कम्प्यूटर ने हमें बताया है।'

'क्या बताया है कंप्यूटर ने।'

'क्या करोगे जानकर बेटा ? कुछ चीजें होती हैं, जिन्हें न जानना ही अच्छा होता है।'

'फिर भी, मै जानना चाहता हूं कि [illegible] के बारे में कंप्यूटर ने आपको क्या बताया है ?'

'वैसे तो मैं चाहता था कि यह सब तुम नहीं जानो, पर अब जब तुम जिद पर ही उतर आये हो तो सुन लो।'

'हां, सुना ही दो।'

'सुनाऊंगा नही, [illegible]
भी तुम समझना नहीं चाहते।'

'यही सही, समझाइए।'

'तुमसे कुछ [illegible] हूं।'

'पूछो।'

'मैं कहां काम करता हूं।'

'कम्प्यूटर सेंटर मे।'

'एक दिन तुम्हे कम्प्यूटर सेंटर ले गया था?'

'हां।'

'दूसरे दिन सलोमी को भी वहां बुलवाया था?'

'हां।'

'तुम्हें कम्प्यूटर सीट पर बिठाया था।'

'हां।'

'इसी तरह सलोमी को भी कंप्यूटर सीट पर बिठाया गया था।'

'फिर?'

'तुम दोनो के सेक्स हारमोंस का विश्लेषण कम्प्यूटर से करवाया था।'

'फिर?'

'तुम तो ठीक निकले, लेकिन सलोमी…।'

'लेकिन सलोमी…।'

'वह ठीक नही निकल सकी।'

'नही निकल सकी…।'

'हां, वह ठीक नही निकल सकी।'

'आखिर क्या खराबी है उसमे, मैं भी तो कुछ जानूं।'

'जानना ही चाहते हो तो सुनो, तुम पिता बनने के लायक तो हो, लेकिन सलोमी कभी मां नही बन सकती।'

'क्या मतलब?'

'हां सोमी, तुम्हारी सलोमी कभी मां नही बन सकती।'

'यह झूठ है पिताजी, सलोमी पूरी तरह से स्वस्थ है। वह मां बन सकती है।'

'नही बेटे, यह बात तुम्हारा मस्तिष्क नही, मन कह रहा है। कम्प्यूटर को क्या पड़ी है कि सलोमी के बारे में झूठ बोले। कम्प्यूटर के सामने न कोई रिश्वत चलती है, न ही कोई सिफारिश। वह तो वही बताता है, जो सच होता है।'

'कम्प्यूटर यह बात कैसे जान सकता है।'

'जान सकता है बेटे, कंप्यूटर सब कुछ जान सकता है। हिसाब लगाकर वह यह भी बता सकता है कि कोई लडकी कितने बच्चों की मा बन सकती है।'

'नही पिताजी, यह नही हो सकता है।'

'हो सकता है बेटे !'

'नही पिताजी, सलोमी एक बार गर्भ धारण कर चुकी है।'

'इसीलिए तो कह रहा हू कि अब सलोमी मां नही बन सकती है; वह एक बार गर्भपात करा चुकी है, यह भी कंप्यूटर ने बताया था और इस गर्भपात ने ही उसके अंग विशेष मे ऐसी गडबड़ी पैदा कर दी है कि अब वह कभी भी मां नही बन सकती।'

'ओ माई गॉड !'

'अपने को संभालो बेटे, सलोमी बहुत अच्छी लड़की है। उससे तुम्हारी शादी न करने पर मुझे भी बहुत दुख होगा, पर क्या करूं ! मैं तुम्हारा बाप हूं और जानबूझकर मैं तुम्हे गड्ढे में गिरने नहीं दूंगा।'

'लेकिन पिताजी, मैं आपका बेटा हूं तो सलोमी का भी कुछ हूं। मैं उसे सिर्फ इस कारण से नही ठुकरा सकता। बच्चे हों या न हो, मेरी शादी होगी तो सिर्फ सलोमी से, अन्यथा···।'

'तुम जीवनभर कुंवारे रहोगे,' पिता ने तुनककर कहा।

'कुंवारे रहे मेरे बेटे के दुश्मन, मेरे बेटे की शादी इसी साल होगी और धूमधाम से होगी।' कहते हुए मां ने प्रवेश किया। सोमी गुस्से मे घर से निकल गया। उसने निश्चय कर लिया था कि वह सलोमी से ही शादी करेगा। अभी जाकर सलोमी से बात करेगा और घर के लोग राजी नही हुए तो दोनो कोर्ट-मैरिज कर लेंगे।

मां आकर पिताजी की बगल मे बैठ गयी और उनसे बतियाने लगी।

'क्या कह दिया सोमी को कि इस तरह रूठकर चला गया।'

'कह क्या दिया, सलोमी के बारे में सच्ची बात बता दी।'

'कैसी सच्ची बात ?'

'यही कि वह मां नही बन सकती, इसलिए उसके साथ उसकी शादी

नही कर सकता ।'

'हाय दैया, का वकत हौ ।'

'अरे भाई, कम्प्यूटर ने जो कुछ मुझे बताया, वही मैं तुम लोगो को बता रहा हू ।'

'कम्प्यूटर क्या कोई ज्योतिषी है, जो इस तरह भविष्य की बातें बता सकता है ?'

'हा सोमा की मा, कम्प्यूटर ही अब ज्योतिषी का काम करेगा । क्यूपिड कम्प्यूटर होनेवाले पति-पत्नी के भूत, भविष्य और वर्तमान का कच्चा चिट्ठा तैयार कर देता है । वह यह भी बता देता है कि कोई लडकी कुमारी है या नही, चरित्रवान है या चरित्रहीन ।'

'यह सब कैसे बताता है तुम्हारा कम्प्यूटर ?'

'उसका तरीका बडा मजेदार है । लडकी को कम्प्यूटर की सीट पर बिठा दिया जाता है । कुछ तार लडकी के शरीर से स्पर्श करा दिये जाते हैं । मशीन चालू होती है तो लडकी के रग, रूप, गुण चरित्र और उसकी पढ़ाई-लिखाई से सबधित प्रश्न पूछे जाते हैं । लडकी के जवाब से कम्प्यूटर विश्लेषण करके सब कुछ बता देता है । लडकी को अगर कोई रोग हो तो वह भी कम्प्यूटर बता देता है ।'

'हाय दैया, फिर तो बडा गजबु होई जई ।'

'हा, जैसा गजब सोमी और सलोमी के साथ हो रहा है, अब कोई बाझ लडकी अपने सलोमी से शादी नही कर सकती । कोई रोगी लड़की किसी स्वस्थ लडके के गले नही बध सकती । कोई चरित्रहीन लडका किसी चरित्रवान लड़की को धोखा नही दे सकता ।'

'तब तो कम्प्यूटर बहुत अच्छी चीज है, लेकिन इससे बडी गडबडी होगी ।'

'नहीं सोमी की मां, कम्प्यूटर यह थोडो कहेगा कि ऐसे लोग शादी न करें, लेकिन शादी करें तो धोखे मे न रहें । अब सोमी अगर सलोमी से शादी करें ही तो बच्चों की उम्मीद न करे ?'

'ना बाबा, हमें ऐसी बहू नही चाहिए, जो पोता-पोती भी न दे सके ।'

'तुम्हारा बेटा तो ऐसी ही बहू के लिए जिद कर रहा है । वह कह रहा

है कि उसकी शादी होगी तो मलोमी से, अन्यथा···।'

'वह कुंवारा ही रहेगा।'

'तो ये बात थी। इसीलिए बच्चू तिनककर चले गये।'

'हा सोमी की मां, अब तुम्ही बताओ। क्या मैं कोई गलत बात कह रहा हू ?'

'नही जी, आप तो बिल्कुल सही फरमा रहे हैं। मैं देखती हूं कि कैसे इन दोनों की शादी होती है।

1972

अंधेरा और अंधेरा

थोड़ी देर पहले ही बारिश बंद हुई है। ट्यूशन पढ़ाकर लौट रहा हूं। सड़क का कीचड़, लगता है शहर का मवाद है। मवाद से सबको घृणा होती है। सड़क छोड़कर फुटपाथ के सहारे घर की तरफ बढ़ रहा हूं। वैसे सड़क खुद उकता गयी है। बहुत कम लोग इधर से उधर आ-जा रहे हैं। ऊपर नजर उठायी तो लाल इमली की टावर-क्लाक सवा नौ बजा रही थी। जिस बच्चे को मैं पढ़ाता हूं, उसने पूछा था, 'क्या पाकिस्तान और हिंदुस्तान मिलकर भारत बनाते हैं?'

'नहीं, हिंदुस्तान ही भारत है।'

'तो क्या पाकिस्तान भारत मां का अंग नहीं है?'

'अंग तो है, लेकिन···' तत्काल मुझे कोई उत्तर नहीं सूझा था और न अब तक कोई सटीक उत्तर सोच पाया हूं। मिल की मशीनों की खड़-खड़-खड़ के बीच मैंने सुना—'चटाक! चटाक!! बेड़ियां और हथकड़ियां टूट गयीं। हम दोनों मुक्त हो गये। मुक्ति का प्रयास हमने मिलकर किया था।'

सुनकर मैं चौंक पड़ा। एक लम्बा-तगड़ा युवक मुझसे दस-बारह कदम आगे बड़बड़ाता हुआ चला जा रहा था। मैंने उसे गौर से देखने का प्रयास किया, लेकिन काली अंधेरी रात में बिजली की बीमार रोशनी ने साथ नहीं

दिया और मैं उसे अच्छी तरह से देख नही सका।

एक विराम के आगे युवक बड़बड़ाया, 'मुक्ति के पहले हमने एक साथ मिलकर मंजिल पर पहुंचने के सपने देखे थे, लेकिन हमारे दुश्मनो को ये सपने रास नही आये। हम दोनों के बीच मे दो अक्षर खड़े कर दिये गये। जानते हो उन अक्षरो को !'

'नही तो !'

'वे अक्षर हैं फू···और ट···और हर अक्षर अपना अर्थ रखता है। फू यानी फूस की तरह जलकर राख हो जाओ और यदि जलने से बच जाओ तो ट अक्षर अपना अर्थ देता है। टट्टू की तरह हो जाओ और दूसरों का बोझ ढोने का काम करो। किसी राष्ट्र, समुदाय अथवा परिवार का सुख-चैन छीनना हो तो इन दो अक्षरों को भेज दो, तुम्हें कुछ नही करना पड़ेगा, समझे !

फूट ने हम दोनों की मंजिल की एक राह को दो राहो मे बाट दिया। हम दोनो दो भिन्न राहों से मंजिल की तरफ बढ़ने लगें। सरल और सीधे रास्ते को छोड़कर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से हमें मंजिल की तरफ जाने के लिए मजबूर किया गया।

मेरे भाई को सलाह दी गयी कि तुम्हारा भाई बहुत तेजी से मंजिल की तरफ बढ़ रहा है। तुम उसके हाथ-पैर काट दो, अन्यथा वह तुमसे पहले मंजिल पर पहुंचकर तुम्हारी सफलता का रंग फीका कर देगा।'

कभी लगता, युवक बुदबुदा रहा है और कभी लगता कि वह बड़बड़ा रहा है।

फुटपाथ पर लगे बिजली के खंभों के पास पहुंचते ही हमारी छाया सिमटकर दुबक जाती और कभी तो हमी में खो जाती। खोये भी क्यो नही, जबकि हमारे बिना छाया का अस्तित्व ही नही है। सूरज के बिना धूप का और चांद के बिना चांदनी का कोई अस्तित्व नही तो अगर छाया खो जाती है हममें, धूप खो जाती है सूरज में और चांदनी खो जाती है चांद मे, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

युवक कभी हाथ उठाता, कभी तैश में आकर मुट्ठियां भींचता। कभी बिल्कुल चुप होकर चलने लगता। तब ऐसा लगता कि युवक कुछ नही

कहूंगा, लेकिन वह कहता, 'दुश्मनों के इशारे पर भाई ने मेरे ऊपर कई बार घातक प्रहार करने की कोशिश की। हथियार मांगे हुए थे। फिर शस्त्र और शास्त्र बिना सच्चे शिक्षक के तो सीखे नहीं जा सकते। मेरे लगने से पहले ही शस्त्री ने भाई के हाथ काट दिये। चोट मेरे भी लगी, किंतु जानलेवा नहीं फिर भी, मेरे हाथ तो जख्मी हो ही गये।

अब मेरे भाई के हाथ नहीं है। मेरे हाथ तो है, किंतु उनमें वह ताकत नहीं कि मैं अपने अपंग भाई की भी रक्षा कर सकूं।

रास्ता मंजिल की तरफ बढ़ रहा था। तभी एक भयंकर तूफान आया। आंखों में धूल भर गयी। हम धुंध में खो गये। पेड़ चरमराकर टूट गिरे। मेघ घड़घड़ाकर बरस पड़े। और फिर अंधड़ शांत हुए। हम भीग गये थे, मगर रुके नहीं। दूर, बहुत दूर मंजिल का चमचमाता कलश दीख पड़ा। हम उत्साह में भरकर आगे बढ़े और मंजिल नजदीक आती गयी। हम मंजिल पर पहुंचने ही वाले थे कि रास्ते में बिखरे हुए मोती देखकर उन्हें झोली में भरने का लोभ संवरण नहीं कर सके।

हम दोनों के पास झोली थी। मैं दोनों हाथों से मोती भर रहा था। मेरे भाई के हाथ नहीं थे, वह मोती भरता भी तो कैसे? अरे, मैं इतनी देर से झोली में मोती भर रहा हूं, लेकिन झोली में तो मोती एक भी नहीं। अरे हां, याद आया, मेरे ऊपर भाई ने जब हथियार चलाये थे तो झोली फट गयी थी। फटी झोली में कहीं मोती रुकते है! दूसरी झोली तो यहां मिल नहीं सकती। तो क्या वापस आऊं? नहीं, मंजिले-मकसूद पर पहुंचकर भी क्या कोई वापस लौटता है? मंजिल समीप है, लेकिन मोतियों को छोड़कर आगे बढ़ें भी तो कैसे?

'भइया, मेरी झोली तुमने फाड़ दी है। अपने हाथ स्वयं काट लिये हैं। न मोती तुम भर सकते हो, न मोती मैं भर सकता हूं। कुछ ऐसा जतन करो कि मोती दोनों को मिल जायें। तुम मुझे अपनी झोली दे दो। मैं उसे मोतियों से भर दूं। मंजिल पर पहुंचकर आधा-आधा बांट लेंगे।'

'चुप रह हरामजादे, मैं तेरी कोई भी बात सुनना नहीं चाहता। मुझे नहीं चाहिए तेरे मोती।'

'जबान संभाल के बात कीजिए साहबजादे, तुम्हारी शैतानियों को अब

तक इसलिए बरदाश्त करते रहे कि तुम मेरे छोटे भाई हो। तुम अच्छी तरह जानते हो कि हम दोनों सगे भाई हैं। मा एक है, बाप दो। तुमने मुझ से अलग होने का इरादा किया। मेरा सिर फोड दिया। दोनों बाप अपने-अपने बेटों के साथ हो लिये। मा किसके साथ रहे ? मा की ममता नही मानी। उसने प्रस्तुत कर दिया अपना अखंड तन और कह दिया, 'कर दो मेरे तन के दो खंड। मेरे स्तनों मे दूध भरा है। एक-एक स्तन ले लो। दूध मिलता रहेगा, लेकिन याद रखो, खड हो जाने पर मैं जीवित न रह सकूगी। इसका मुझे गम नही, लेकिन तुम दोनों फिर कभी लड़ना-झगड़ना नही।'

मां के उस बलिदान को तू भूल गया और भूल गया उसकी कामनाओं को। तू यह भी भूल गया कि इसी मां के पेट में पला है, इसी के स्तनों का दूध पिया है, इसी की गोद मे खेला है। मा के बलिदानों का यह प्रतिफल, उसके अरमानों की यह हालत, उसके दूध का यह मोल। तू अपने को किसी और के हवाले कर मा के आचल के चिथड़े उड़वाना चाहता है। क्या तू चाहता है कि कोई मा के साथ बलात्कार करे, उसकी इज्जत से खेले ? अगर तू ऐसा चाहता भी है तो मैं हरगिज नही होने दूगा।'

'कैसे नहीं होने देगा। जो मेरे मन मे आयेगा, करूंगा। नही जानता मेरे दोस्तों को ? तेरी हड्डी-पसली तोड़कर रख देंगे।

'तेरे दोस्तों की ऐसी की तैसी ! देख, सभल !' कहते हुए युवक का झूमता हुआ हाथ बिजली के खभे पर पड़ा। झनन…खभा झनझना उठा। भड़ाम…न जाने कैसे बिजली के खभे का बल्ब चू पड़ा और हम अंधेरे में खो गये, अंधेरे और अंधेरे में।

1971

उसने देखा

उसके गौर मुखमंडल पर बाल-रवि-रश्मियां नर्तन करने लगी, मलयानिल उसके काले घुंघराले केशों से उलझ पड़ी। उसके अधरों की लालिमा की तुलना दिशाएं लगी करने अरुण की अरुणिमा से, परंतु अरुण की अरुणिमा उसके अधरों की लालिमा की तुलना न कर सकी। पराजित समझकर अपने को, अरुण ने बदल ली अपनी अरुणिमा स्वर्णिमा में। उसके वसनों में जड़ित रजत-बिंदुओं के सौंदर्य को देखकर ओस कणों ने तो मानो अज्ञातवास ही ले लिया।

कल-कल-निनाद करती पयस्विनी के तट की एक चट्टान पर बैठी वह पत्थरों से खिलवाड़ करते छन-छन उछलते निर्मल नीर के अनुपम सौंदर्य को बड़ी तन्मयता से बेसुध बनी देखे जा रही थी। वह कौन? सीमा, एक लड़की, जिसने अपनी मां के मधुरिम स्नेह को नहीं पाया। बहुत ही नेकदिल एवं पर्याप्त संपतिवाले बाप ने जिसका पालन-पोषण किया। वैभव में पली सीमा मनुष्यत्व के गुणों से ओत-प्रोत है। उसकी तल्लीनता को कोयल की मनोहर ध्वनि ने भंग कर दिया। पीछे मुड़कर देखा तो हाथ में पुस्तक लिये अत्यंत साधारण लिबास में खड़ा वह न जाने कब से उसकी तन्मयता को निहार रहा था। वह कौन? अनिल, एक विद्यार्थी, जिसका पालन-

पोषण साधारण परिवार में हुआ, जिसके पिता ने आजादी की रक्षा में अपना बलिदान कर दिया। अब केवल उसकी मां तथा बहन हैं, जो गाव में रहकर गुजर-बसर करती हैं। परीक्षा में सदा प्रथम श्रेणी पानेवाला अनिल बैडमिंटन का कुशल खिलाड़ी एवं साहित्यकार है। सीमा के बंगले से थोड़ी ही दूर पर किराये के एक साधारण कमरे में रहता है। सीमा के साथ वह एम० ए० फाइनल में है। अनिल के व्यक्तित्व ने सीमा को पहले से ही अपनी ओर आकर्षित कर रखा है।

आज अनिल को अकेले पाकर सीमा ने अपने हृदय के उद्गार व्यक्त करने का निश्चय कर डाला, मगर अनिल की आंखों को देखा तो देखती ही रह गयी। सीमा का मानस-अलबम अनिल के चित्रों से सुशोभित होने के लिए आतुर हो उठा। पिता के सिवा यह दूसरा चित्र था, जिसे सीमा अपने मानस में सदा-सदा के लिए सजा रही थी।

अनिल के कदम आगे की ओर बढ़े। हाथ की नयी पुस्तक सीमा की ओर बढ़ायी, मगर सीमा को इसका ध्यान कहां? वह तो अनिल के नेत्रों में उलझी हुई थी।

'क्या मेरी भेंट अस्वीकार है?'

'जी···जी···नहीं।'

'तो फिर?'

'बैठिए, आपसे कुछ कहना है।'

सीमा का सिर लज्जावश झुक गया था। वह जो कुछ कहना चाहती थी, कह नहीं पा रही थी। तमाम साहस बटोरकर उसने कहा :

'अनिल साहब, बहुत दिनों से मेरी एक इच्छा है। इतने दिन साथ रहने पर भी मैं आपसे कह न सकी।'

'कौन-सी इच्छा है आपकी?'

'मैं आपको अपना जीवनसाथी···'

सीमा आगे कुछ न कह सकी। सीमा की यह बात सुनकर अनिल आश्चर्य की धारा में बहने लगा। कुछ सोचकर उसने कहा :

'सीमादेवी, तुम साधारण विद्यार्थी को क्यों अपना जीवनसाथी बनाना चाहती हो? मैं तुम्हें क्या दे सकूंगा? दुख-ग्लानि, दुख-विषाद और····

'मुझे समझने मे आपने भूल की है। आप सोचते होंगे कि वैभव मे पली सीमा कष्टो का सामना नही कर सकती, किंतु आपसे पहले भूख-प्यास, दुख-विषाद सहन करते हुए जर्जरित इन्सानियत की सेवा करने के लिए तत्पर हू। मुझे केवल आपका साथ चाहिए।'

'सीमा, जीवनसाथी एक दिन के लिए नही, तमाम सारी जिंदगी के लिए होता है। इस विषय पर तुम गंभीरता से विचार कर निर्णय करो।' कहते हुए सद्य प्रकाशित अपना कहानी-संग्रह सीमा के हाथो मे रखकर अनिल लौट पड़ा। तभी दौडकर सीमा अनिल के पैरो मे झुक गयी। विवश अनिल ने सीमा को गले लगाकर कहा, 'सीमा, आंसुओं से छलछलाते तुम्हारे इस लुभावने प्यार को ठुकराने मे मैं असमर्थ हू, मगर फिर भी सोच लो कि सामाजिक एव पारिवारिक कीडे हमे शाति से रहने नही देंगे।'

'अनिल साहब, युग बदल चुका है, युग की मान्यताएं बदल चुकी है और जो रूढ़ियां शेष हैं, उन्हे तोड़ना क्या हमारा कर्तव्य नही है ?'

अनिल निरुत्तर हो गया। दोनो अपने-अपने निवास की ओर निकल गये और फिर समय गुजरता चला गया। एक दिन सीमा के पिता घर आये तो बहुत प्रसन्न थे। आते ही उन्होने आवाज दी, 'सीमा !'

'हा पिताजी !'

'देख मैं तेरी शादी पक्की कर आया। लड़के का बाप एक कारखाने का मालिक है। लड़का एम० ए० मे पढता है। ले, यह रहा उसका फोटो।'

फोटो लेकर सीमा अपने शयनकक्ष की ओर चली गयी। थोडी देर बाद पिता को सिसक-सिसककर रोने की आवाज सुनाई दी। जाकर देखा तो सीमा रो रही थी।

'रो क्यो रही है बेटी ?'

सीमा चुप थी। उसके लाल कपोल अश्रुवारि से गीले हो गये थे।

'बेटी, चुप क्यो है ? मैने तुझे किस तरह तो पाला है। आज तू मुझसे बोलती तक नही।'

'पिताजी, आपने मुझे पाला है, पढा-लिखाकर योग्य बनाया है, आप का मेरे ऊपर पूरा अधिकार है, मगर आपके वर-चयन के पहले ही मैंने किसी को अपना जीवनसाथी चुन लिया है।'

'बेटी, यह तो मेरा सौभाग्य है कि तुझे तेरे योग्य पति मिल गया। बता, वह क्या है ?'

'एक कॉलेज में पढ़ाते हैं।'

'तो फिर ठीक है।'

सीमा दौड़कर अपने पिताजी की छाती से चिपट गयी। प्रसन्नता के सागर में गोते लगाती हुई वह मन ही मन पिता की प्रशंसा करने लगी। पिताजी से आज्ञा लेकर सीमा ने एक साहित्य-भवन का निर्माण करवाया— संग्रहालय, पुस्तकालय, शोधकक्ष, मंत्रालय, प्रकाशनकक्ष, मुद्रण तथा मुख्य कार्यालय के लिए अलग-अलग कमरे बनवाये। अब 24 मार्च आनेवाला था। ठीक दो वर्ष बाद सीमा ने अनिल को लिखा।

प्रिय अनिल, दो वर्ष होने जा रहे हैं, जबकि हम दोनों 24 मार्च को चट्टान पर मिले थे, मेरी चाह गहरी हो रही है। मैं नहीं, वही चट्टान तुम्हें बुला रही है। याद रखना, 24 मार्च।

केवल तुम्हारी,
सीमा

पत्र पाकर अनिल की स्मृतियाँ ताजी हो उठीं। 24 मार्च को अनिल ट्रेन द्वारा समीपस्थ स्टेशन खेरीलाल पहुंच गया। उसके कदम उसी चट्टान की ओर बढ़ चले। सीमा पुष्पमाला लिये अनिल की प्रतीक्षा कर रही थी। अनिल के पहुंचते ही सीमा ने पुष्पमाला उसके गले में डाल दी। अनिल ने अपनी अंगूठी उतारकर सीमा की अंगुली में पहना दी। मुस्कराते हुए सीमा ने कहा, 'आओ, घर चलें।'

'किस घर ?'

'अपने घर।'

'अपना कौन ?'

'आपके लिए हमने नया घर बनवाया है।'

सीमा के साथ अनिल नये घर की ओर चला। भवन के मुख्यद्वार पर पहुँचकर उसने पढ़ा—अनिल साहित्य संस्थान।

1969